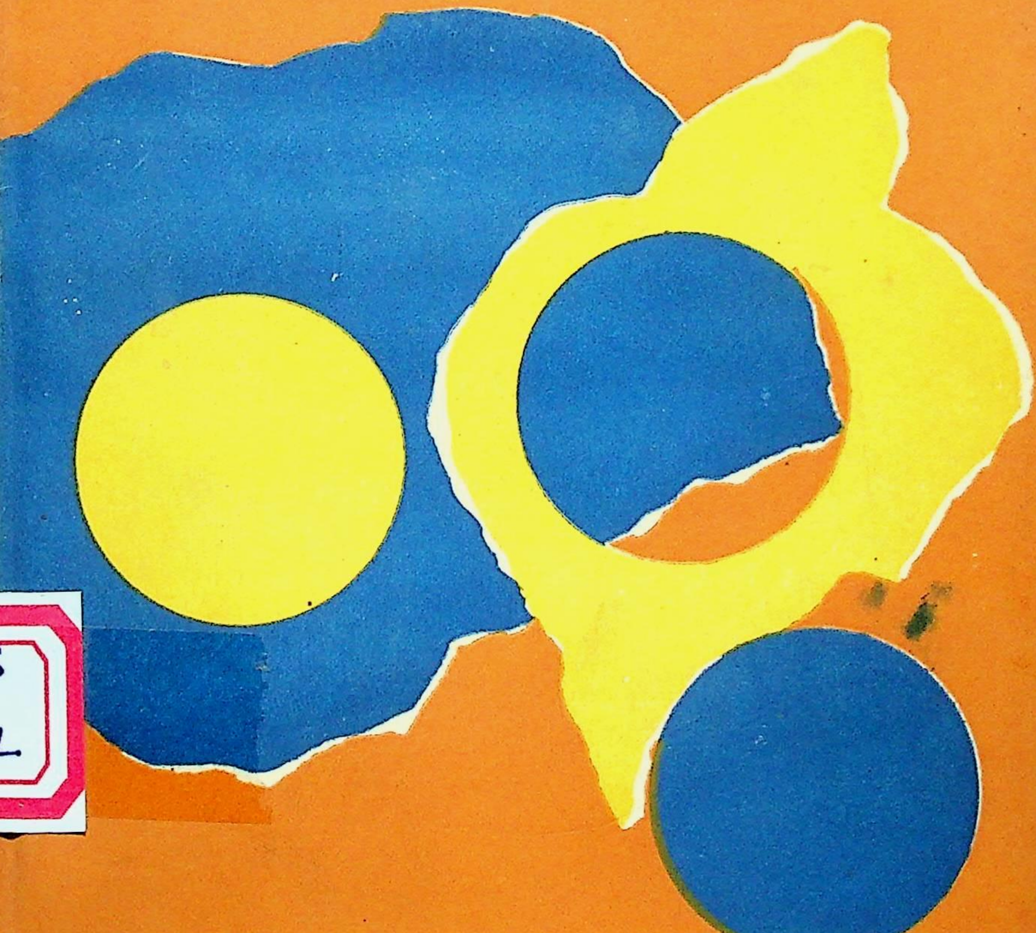
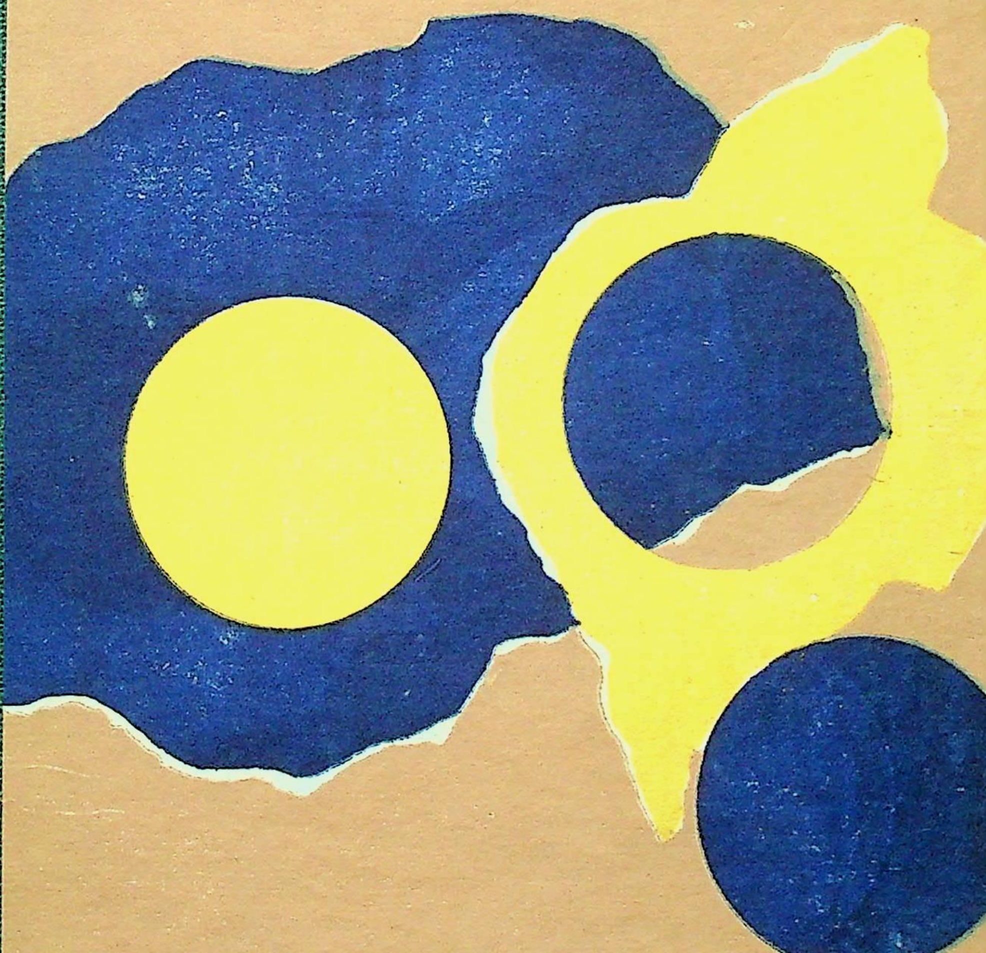
लिखा तुम्हारे लिए

रमेश शेखर



लिखा तुम्हारे लिए

रमेश शेखर



कृति की प्रत्येक रचना में पाठक को विदग्ध कवि के भावचित्र अंकित मिलेंगे, जो प्राणों के तारों को झंकृत करेंगे। कोई भी सहृदय रसज्ञ उनसे प्रभावित हुए बिना न रहेगा। कोई-कोई पूरा गीत, किसी गीत का एक चरण और किसी की एक पंक्ति मन में बार-बार गूंजेगी। इसलिए, कि उसमें मन को छूने की बात है, अन्तर्मन की अनुभूति है, जो व्यक्तिगत होकर सार्वजनिक बन गई है।

—सोहनलाल द्विवेदी

स्नेही बंधु
डॉ० रामस्वरूपजी आर्य
के लिए
सादर. [illegible]
१४.११.६६.

लिखा तुम्हारे लिए

लिखा तुम्हारे लिए

रमेश शेखर

प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ० प्र०)

संस्करण : १९७७

मूल्य : बारह रुपये

मुद्रक : न्यू इंडिया प्रिंटिंग प्रेस, खुरजा (उ० प्र०)

संकलन के विषय में

कविवर रमेश शेखर के बहुचर्चित 'रूपमती' खंडकाव्य के उपरांत मर्मस्पर्शी कविताओं का संग्रह **'लिखा तुम्हारे लिए'** प्रस्तुत है। प्रकाशन की इस मंगलवेला में, मैं कवि को हृदय से बधाई देता हूँ और उसकी कृति का हिंदी जगत् में स्वागत करता हूँ।

कृति की प्रत्येक रचना में पाठक को विदग्ध कवि के भावचित्र अंकित मिलेंगे, जो प्राणों के तारों को झंकृत करेंगे। कोई भी सहृदय रसज्ञ उनसे प्रभावित हुए विना न रहेगा। कोई-कोई पूरा गीत, किसी गीत का एक चरण और किसी की एक पंक्ति मन में बार-बार गूँजेगी। इसलिए, कि उसमें मन को छूने की बात है, अंतर्मन की अनुभूति है, जो व्यक्तिगत होकर भी सार्वजनिक बन गई है।

मेरी मान्यता है, भावना की ऊष्मा अग्नि ही काव्य-शरीर में प्राण-प्रतिष्ठा करती है, उसके बिना वह निष्प्राण हो जाता है। और अनुभूति

काव्य की आत्मा है। आत्मानुभूति से प्रसूत काव्य अपनी निजस्विता रखता है और साधारण काव्य से वह असाधारण काव्य के शिखर पर प्रतिष्ठित होता है।

इन रचनाओं को पढ़कर महाकवि अकबर की निम्न पंक्तियाँ मुझे अनायास याद आ गईं :

इश्क को दिल में जगह दे अकबर,
इल्म से शायरी नहीं आती।

मुझे जिस तथ्य ने सर्वाधिक स्पर्श किया, वह यह है कि कवि ने केवल कोरे कागज़ नहीं रँगे, उसने किसी को मन से प्रेम किया है, और वही प्रेम अनेक रूपों में, अनेक छंदों में प्रस्फुटित हुआ है; कभी अश्रुजल बन कर, कभी अंतस्स्पर्शी व्यथा बन कर, कभी विवेचना बन कर, तो कभी विवेक बन कर। साथ ही मेरी मान्यता है, जिसके मन में प्रेम छलकता है, वह व्यक्तिविशेष से उद्भूत होकर, समाज को भी उसी आत्मीयता से एक दिन अपनाता है, और व्यक्तिगत प्रेम जब सार्वजनीन प्रेम का रूप धारण करता है, तब उसका विराट् रूप सभी को अपने में समाहित कर लेता है।

प्रत्येक रचना के संदर्भ में कुछ-न-कुछ कहा जा सकता है, किंतु मैं प्रबुद्ध पाठक को अपने निर्णय से बाँधना नहीं चाहता। मुझे ये रचनाएँ रसात्मक अनुभूति में तन्मय कर सकी हैं, इस दृष्टि से सभी रसज्ञों को रसमग्न कर सकेंगी, मेरा अपना विश्वास है।

हाथ कंगन को आरसी क्या ? पाठक कवि की रचनाएँ पढ़ें और उसे आशीर्वाद दें, जिससे वह इनसे भी उत्कृष्ट रचनाएँ लिख कर साहित्य तथा समाज की श्रीवृद्धि करने में समर्थ हो। आशीर्वाद में भी बड़ा बल होता है, यदि अंतर्मन से प्रदान किया जाए।

कवि ने स्वयं अपनी सुचिंतित 'मन की बात' रख कर सभी कुछ लिख दिया है। उसी दृष्टिबिंदु से इन रचनाओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

एक बार पुनः कृतिकार का मैं अभिनंदन करता हूँ और आशा करता हूँ, उसे बड़ा स्नेह और उचित सम्मान प्राप्त होगा।

नई दिल्ली

सोहनलाल द्विवेदी

मन की बात

आत्मा तक चुभ रहे हैं शूल
शूल कोई पार हो जाए।

सौंदर्यानुभूति की पृष्ठभूमि पर मोहक रूप-लावण्य और लययुक्त शब्दों के आश्रय से सौंदर्य-सृष्टि का मुखर रूप कविता है, जो सौंदर्यबोध की उत्तप्त जीवैष्णा के रूप में मनुष्य को समर्पित होती है। यही जीवैष्णा अचेतन मन से प्रतिकूल परिस्थितियों में मनुष्य के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्य—औदार्य, सहानुभूति, सहयोग, संवेदना, त्याग, कर्मठता और बलिदान की क्षमताओं का उत्कर्ष करके मानव को विकास के चरमबिंदु पर ले जाती है—यही सत्य है, पवित्र है, नियति है।

निर्मित होते हुए रचनाकाल के कुछ गीत भी इस संकलन में दे रहा हूँ। रचनाओं का आयतन? इसे तो प्रिय पाठकगण ही निश्चित करेंगे। बहुत पहले 'रूपमती' (खंडकाव्य) के प्रकाशन पर मुझे पाठकों से पर्याप्त स्नेह मिला था। अब गीत-संग्रह **'लिखा तुम्हारे लिए'** पाठकों के समक्ष है। ये रचनाएँ १९७० तक की हैं। इनमें क्या है, क्यों है, किस प्रकार है? यह सोचता हूँ तो पाता हूँ कि भाषा तो वाणी और श्रवण से परे वह संज्ञा है जिसे नयन बोलें और हृदय समझे। हृदय जो अनुभव करता है, मस्तिष्क जो सोचता है, उसे ठीक-ठीक शब्द नहीं मिल पाते हैं। हम जो लिखते हैं मात्र सांकेतिक भाषा होती है। मनुष्य बड़ा ही विवश है कि अपनी धड़कनों को भाषा का रूप नहीं दे पाता है—अंतर के उद्‌गारों, उद्वेगों को शब्दों की अपेक्षा इंगित मात्र से अधिक कह और समझ लिया जाता है:

चहल-पहल, संभाषण क्या है—मिथ्या नाटक, नग्न प्रवंचन,
झुकी-झुकी पलकों की सिहरन से अभिवादन हो जाता है।

प्रस्तुत गीतों की परिधि-परिमिति जिस सीमा-विस्तार में है, उसी में अपना समाधान रखना चाहूँगा। जीवन में स्थूल तो मात्र शरीर के सान्निध्य के लिए स्पर्श की परिधि का शरीरीकरण है। इसका अशरीरी अंग कलानुभूति का केंद्र है। शरीर मन से पृथक् नहीं है। मन की बात करने में शरीर का सहयोग रहता है। दोनों को पृथक् करने की प्रक्रिया का अहितकर परिणाम कुंठाओं में जन्म लेता है। ऐसी स्थिति में, कविता में तिर्यक् भावनाओं का अपरूप मात्र रह जाता है—जीवन का असहज अपूर्ण हास्यास्पद रूप! शरीर और मन जो एक-दूसरे के साधक और साधन हैं, इनके पारस्परिक आश्रय को न मानना जीवन की स्फूर्त परिवर्त्य बीजरूप शक्तियों को विकृत करके

व्यक्तित्व का विघटन करना है। आदर्श की तरंग में देवता या संन्यासी बनने की कल्पना करना अच्छी बात है, पर दिवास्वप्नों में जीना जड़ता है :

मैं तो ऐसा दर्द न लूँगा जिससे कुछ निर्माण न हो
ऐसी भक्ति नहीं करता हूँ जिसका साथी ज्ञान न हो।

प्रेममय जीवन ही जीवन का विवादहीन आदर्श दर्शन है। कविता की रस-सिद्धि प्रेम की मधुरता में तन-मन के तादात्म्य से ही संभव है। एक रोमन कहावत है—'मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है जो बिना प्यास के पानी पीता है और प्रत्येक ऋतु में प्रेम करता है।' प्रेम को प्रणय का रूप न मिले तो 'प्लेटोनिक (निष्काम) प्रेम' ही हो सकता है, जो पुरुषार्थहीन पुरस्कारहीन उपलब्धि है। ज्ञान और कल्पनाशक्ति से प्रेम सुखद संयोग की ओर अग्रसर होता है, सहजात प्रवृत्तियों के रहस्यात्मक संबंधों की गति होती है तब अंतर की ऊर्जस्विता से भ्रम-जाल क्षार-क्षार हो जाते हैं। जहाँ ऐसा नहीं हो पाता, शक्ति-संवेग-अग्नि से तन-मन की धातुएँ राख हो जाती हैं, जिसके मर्मांतक परिणाम उपेक्षा-नीरसता, दुःख-विषाद, विद्रोह-अराजकता, छटपटाहट-अतिक्रमण, आत्मपीड़ा-परपीड़ा एवं बोध-अबोध-आदर्श की विकृति के रूप में समाज की आंतरिक दशा सदैव भोगती रही है। यहाँ मेरा तात्पर्य संयमहीन प्रेम से नहीं है। प्रेम शरीर और मन पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि बहुत सारी बातें उत्तेजना के क्षणों में यौनाकर्षण को संयमित करती हैं।

सचेत पीढ़ी अपनी सक्रिय वयस्कता में किसी-न-किसी रूप में अवश्य कुछ-न-कुछ हेर-फेर करके समकालीन सामाजिक निदर्श के सीमोल्लंघन के प्रयोग से समीचीन आस्थाओं की स्थापना करती है। या यों कहिए कि 'उदीरणा', जो आवश्यकता से उत्पन्न होती है और प्राणी को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है, की वांछा-पूर्ति ही जीव को सुख, शांति और तृप्ति दे सकती है। इसे समाज घुमा-फिराकर, लुका-छिपाकर और विज्ञान सम्यक् रीति से स्वीकारता है। विज्ञान की कसौटी और मान्यता सदैव एक-सी है, उसकी स्थापनाओं में मनुष्य की ईहा और उदीरणा सृष्टि का अटल सत्य है। जीवन-यापन की दृष्टि से वास्तविकता, नैतिकता, प्राकृतिकता और वैज्ञानिकता में समय और स्थिति के हेर-फेर से परस्पर तीव्रता का भेद भले ही हो पर अदृश्य और मौलिक भेद नहीं है। इसलिए जो ज्ञान और सौंदर्य के प्रति नित्य मानवीय प्रवृत्तियों का सम्मान नहीं करेगा, वह प्रकृति और विज्ञान से विमुख रहेगा, जी नहीं सकेगा। लोकजीवन को व्यवस्थित करनेवाली भौतिकता के 'आत्मतोष' और व्यक्तिगत जीवन को कुंठित

करनेवाली अभौतिकता के 'आत्मव्यंग' को समझना होगा। मनुष्य कोई वायु-ग्रंथि तो है नहीं जिसे तोड़-फोड़ दिया जाए।

हमारे देश में सामाजिक अधिकारियों के पास वैज्ञानिक कसौटी पर खरे सांस्कृतिक धन के भंडार थे भी तो उन भंडारों के द्वारों पर महंतों ने मिथ्या धर्म-कर्म के तालों को अपने संकुचित विश्वासों की चाबियों से जकड़कर उन्हें ऐसे गुप्तस्थान पर रख दिया कि वे अज्ञात दशा में विस्मृत मंडूर के रूप में पड़ी रही हैं। जीवन-विधान की अनुकूल गति के फलस्वरूप सौख्य, स्वस्ति और स्वास्थ्य में मानव की पूर्णता ही दैवी इच्छा है। दैवी गति को भंग करने अथवा इसको विपरीत दिशा में चलाने में शक्ति का अपव्यय करने की कितनी बड़ी भूल लोगों ने की। उन लोगों में चाहिए था हृदय प्रेमी का, स्वभाव बालकों जैसा और मस्तिष्क दार्शनिक का, किंतु खेद है कि ऐसा कुछ न था। अंधेरे में भटकने और स्वयं को महान् समझनेवाले निष्ठुर समाज में आसक्ति, कामना और मोह से बचते रहने के लिए प्रताड़ित, अनासक्ति, विरक्ति, निवृत्ति के झूठे आश्वासनों से अनाश्वस्त, असत्य, अन्याय और हिंसा से पीड़ित, पाप-पुण्य, नैतिकता-अनैतिकता की विकृत परिभाषा से आक्रांत, धार्मिक मान्यताओं के रूप में पढ़े-लिखे लोगों के अंधविश्वास और अधर्म, त्याग में भोग और लालच, न्यायच्युत निंदा-स्तुति, आचार-विचार के नाम पर ढोंग और मर्यादाओं के साँचे में ढली कुरीतियों से अशांत, पग-पग पर उत्तरीय में काटों की उलझन से क्लांत, अकेले होकर मैंने समाज के विद्रूप को बहुत निकट से सहा है :

नगर-नगर जीवन उलझाकर डगर-डगर से प्यार बढ़ाकर
लंबी उमर गँवाई सूनेपन में गंध-सुगंध लुटाकर।

सौंदर्य और प्रेम की व्याख्यात्मक धारणाएँ रुचिवैचित्र्यानुसार भिन्न हो सकती हैं। मैं उन लोगों को पाखंडी और समाजशत्रु मानता हूँ, जो वास्तविकता पर आवरण डाल कर बात कहते हैं। जीवन में प्राकृत प्रतिशतता अधिक है, परंतु कृत्रिमता अपनी प्रतिशतता का आरोप अधिक करने लगी है। जीवन के मुख्य उद्देश्य पर पहुँचने के निमित्त जड़-चेतन का यथार्थ ज्ञान और पाप-पुण्य का विवेचन दर्शन का प्रयत्न रहा है। किसी समय समाज में अनियंत्रण, असंतुलन जैसा कुछ था भी तो चिकित्सक भी ऐसे कलाशून्य, असमाजशास्त्री, अनार्य पुरोहित मिले, जो अपने उपचार से आरोग्य के भ्रम में कल्पनावाद की अनिश्चित ऊँची उड़ान में अतिआदर्शवाद के कच्चे धागों से अंतराल में अप्रत्यक्ष महलों की रचना करने में प्रत्यक्ष की धारा को छोड़ गए। भ्रमित बुद्धि की पुकार पर निजी संकीर्ण दृष्टिकोण से

धर्म और तत्त्व, पाप और पुण्य के विवेचन का दुरूह भार उठाने की प्रक्रिया में बौद्धिक, नैतिक और भौतिक जगत् में प्रेमजन्य सुव्यवस्था का गला घोंट गए। आदर्श जीवन दर्शन को विकृत कर मानव-विकास के इतिहास को मिट्टी में मिला गए। धर्म और समाज के जिन ढोंगी गुरुओं ने अपनी कूपमंडूकता से मनुष्य को केंद्र न मानकर अपनी धारणाओं को केंद्र बनाकर समाज को क्षति पहुँचाई वे अज्ञानताग्रस्त लोग ही धर्म-कर्म के प्रभु माने जाने लगे। इनकी शिक्षा को मानने का दूरगामी दुष्परिणाम हुआ जन-जीवन में धर्म का दिवालियापन—जातिवाद, उपजातिभेद, छुआछूत, पोंगापंथी, पाखंड, वर्गविद्वेष, असमानता, प्रांतीयता, क्षेत्रीयता, अराष्ट्रीयता आदि का भ्रम, संपत्ति का प्रदर्शन, झूठा अहंकार, मार्गदर्शन के स्थान पर जकड़न और निरर्थक मान्यताओं का पालन। समाज का संपूर्ण ढाँचा ही गड़बड़ा दिया। यही नहीं, संदेहशील विचारकवर्ग ने दैनिक जीवन के साहसिक विनिमय की सामयिकताओं से त्रस्त होकर प्रकृति-प्रदत्त 'आत्म' के विरुद्ध निषेधों, वर्जनाओं की विनाशकारी व्यवस्था हमारे स्वतंत्र अस्तित्व पर थोप डाली। हम इस व्यवस्था की अनगढ़ शृंखलाओं में जकड़े बलात् लादी गई परंपराओं में भय, चिंता और संदेह से बोझिल, भूलों की हिमालयी चट्टानों से दबे-दबे सत्य-तथ्य से अपरिचित रहते आ रहे हैं। इन निषेधों-वर्जनाओं के कारण सबसे अधिक क्षति हुई युवा रक्त की, बौद्धिकता पंगु हो गई। विडंबनाग्रस्त समाज को आत्मबोध हो ही नहीं सका। अब युग ने हमें अस्वाभाविक अवरोधों से सतर्क करके क्या, क्यों, कब, कहाँ, कैसे और कौन की तार्किक रीति से बौद्धिक, नैतिक विकास की दृष्टि से यथा-स्थिति की स्वीकृति के लिए तैयार किया है। राष्ट्रपिता गांधी जी की एक उक्ति है—'कुरीति के अधीन होना कायरता है, जिसका विरोध करना पुरुषार्थ है' :

मैं तुम्हारा-सा न सुंदर जाल कोई रच सकूँगा
तुम दया करके मुझे मत कलियुगी साधू बनाओ।

यों तो जीवन में कुछ भी स्थायी और चिरंतन नहीं है। परंतु, मानव अपनी मौलिक क्षमताओं के बल पर जटिलताओं से जूझकर अपना बहुमुखी विकास करना चाहता है। सामाजिक मूल्य जो परिवेश-प्रभाव से सीमित अथवा विस्तृत रूप में आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील हैं, प्रत्येक काल में वर्तमान की कसौटी पर परखे जाते हैं। व्यक्ति जो मनोवैज्ञानिक स्पंदन है, अंतर्बाह्य प्रति-क्रियाओं में उसका प्रतीयमान विद्यमान है। वह जीवन-वृत्त-विधि के अनुसार स्वयं निर्मित प्रतीकों में स्वयं का आरोपण कर प्रकृति का सर्वोच्च प्रदर्शन-पुंज

बन जाना चाहता है। रूप और कला उसका स्वाभाविक उद्दीपन है। प्रकृति-प्रदत्त ईहा के दमन और निरोध से उत्पन्न तनाव और विकृति बहुत अशुभ होती है। प्राकृत शक्ति का हनन न करके कामनाओं के कलात्मक विस्थापन की उपलब्धियाँ समष्टिभर के लिए शुभ हैं। अंतर्बाह्य अनुप्रेरणाओं द्वारा पुरुषार्थी शक्तियों का संचालन, इच्छाओं के संवेदन की चेष्टाओं को शोभन रूप देकर आनंद की साधनावस्था का सुख प्राप्त करता है। ईहा अपने विरोधी तत्त्वों के विरुद्ध किसी-न-किसी दिशा में आत्माभिव्यक्ति की रीति से अनुकूलन प्राप्त कर ही लेती है, बोध के साहचर्य से आदर्शरूप में अबोध की स्थापना करती है—यह आनंद-साधना की सिद्धावस्था है। ऐसे ही आवर्तन में मर्मानुभूति के नेपथ्य से मेरे मन का आवाहन है। हृदय के रिसते हुए घावों के कारण मेरी रचनाओं में जब मांसलता का अंश आता है, मैं दोष नहीं मानता, क्योंकि मैंने इन घावों को आत्मा तक झेला है। प्रेम, सौहार्द और प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए मात्र बुद्धि से मनुष्य का पथ-निर्देशन मैं न्यायोचित नहीं मानता। चाहे आध्यात्मिक युग हो, चाहे आर्थिक, जीवन में आग और आँसू दोनों हैं, इसलिए जीवन के प्रति उदात्त और सहनशील होना ही रचनात्मक संवेग है :

संभव है नासमझी के दिन दो दिन का अपयश दे जाएँ
इसका अर्थ नहीं दो दिन सारे जीवन का सुख ले जाएँ।

देश, काल और परिस्थिति सापेक्ष तीव्र मस्तिष्क एवं आर्द्रहृदय का यथायथ समवेत सामंजस्य ही सुखद जीवनयापन का परिनिष्ठित बिंदु है। किसी भी आवश्यकता की पूर्ति एकपक्षीय विचारों, हृदयोत्पीड़न और भावों के निर्मम दमन से नहीं होती है। परिस्थितियाँ और अनुभव बताते हैं कि व्यक्ति स्वयं में निर्दोष है। उदर, यौन और आत्मरक्षा की व्यवस्था में लगे थके-हारे पीड़ित, व्यथित व्यक्ति को त्याग और आकर्षण, प्रेम, सौंदर्य और समर्पण की भावना ही सांत्वना दे पाती है। कविता और कला के क्षेत्र में मनुष्य की अभिव्यक्तियों को अल्पसामयिक मूल्य और मान्यताओं के दर्पण में देखना बुद्धिमत्ता नहीं होगी। संकीर्ण नैतिकता को त्यागकर श्लील और अश्लील की वास्तविकता को जानकर उसे माया के इंद्रधनुषी रंगों से परिवेष्ठित मानव की भूलों-पश्चात्तापों के क्षणों में जीव के मूल अनुप्रेरकों की मृदुल भूमि पर विविध प्राकृतिक प्रेरणाओं, अंतःकरणीय क्रियाओं एवं अभिवृत्तियों के स्तर पर स्वस्थ सामाजिक परिधि में संपूर्ण मानवीय विस्तार के संदर्भ में संवेदनशील हृदय से शीतल सुगंधित आलोक में खड़े होकर स्निग्ध दृष्टि से देखना-परखना होगा। कविता का समीक्षक कविता के कारक को दृष्टि में नहीं रखेगा तो कविता की उदात्तता, सुष्ठुता और

चारुता के परीक्षण में धोखा खा जाएगा। इन रचनाओं में जहाँ कहीं (झूठी) सामाजिक मर्यादाओं के प्रति हलचल और अनास्था प्रतीत होती है वह विवश मानव की आशाओं-कामनाओं पर होनेवाले अत्याचार के विरुद्ध परिमार्जनशील आस्था है। मैं मानव प्रवृत्ति से निराश नहीं हूँ। परंतु, जानता हूँ कि शताब्दियों से संस्कारी अहंमति में पला, दकियानूसी विचारों में जकड़ा हुआ एक वर्गविशेष, जो स्वयं को धर्म-कर्म और चरित्र का ठेकेदार मान बैठा है, ऐसी आस्था को शीघ्र सहर्ष स्वीकार करना नहीं चाहेगा। जीवन की विसंगतियों में भटकना और समाज को भटकाना चाहेगा। मनुष्य की जिजीविषा को मार देना चाहेगा।

कविता में व्यंग्य और सुधार की बात पढ़ने या सुनने में बड़ी भली लगती है, किंतु व्यावहारिक क्षणों में व्यक्ति साहस के अभाव में झूठी परंपराओं से पराभूत होकर रह जाता है। पिछड़े हुए विचारों में लिपटे हुए लोगों के पूर्वाग्रही बोध को झकझोरकर समाज को आगे बढ़ाने के लिए तीखे-से-तीखे व्यंग्य और गहरी-से-गहरी चोट करनेवाली उक्तियों की अभी और आवश्यकता है। इस संकलन में ऐसी उक्तियाँ मिल जाएँगी।

मानसिक जीवन से जीवन की मानसिकता की ओर मेरा समाधान है। मानविकी क्षेत्र में गीत मन की एक ऐसी पुकार है, जो सर्वोच्च मानसिक स्तर की अपेक्षा रखता है। गीत मन को मोहता ही नहीं जीवन की व्याख्या भी करता है और व्यक्ति को सांसारिक झंझटों, स्वार्थमय प्रयोजनों से उठाकर विराट् भावलोक में स्वर्गीय आनंद भी देता है। मैं अपने गीतों में अधीर रहा हूँ कि कामनाओं की सिहरन हो, मुक्त हृदय की धड़कन हो, अकृत्रिम हस्ताक्षर हों, मनुष्य के स्वाभाविक चारित्रिक सत्य के आयाम हों—कोई बौद्धिक भ्रम न हो। मनुष्य का जीवन संसार की सबसे बड़ी वास्तविकता है। जीवन के सत्य को अपदस्थ न करके समाज की तंद्रिल चेतना में उथल-पुथल करके मानव-मन को जीवन के शोभन यथार्थ की दिशा में ले जाने की कुछ भी शक्ति इन रचनाओं में हो तो मैं अपने कवि को जागरूक मानूँगा, इसी में उसका उन्मेष है, जो मेरी काव्य-तीर्थयात्रा के लिए यथेष्ट है। अमृता प्रीतम के 'इमरोज़' की सूक्ति याद आ गई है—'अगर राह अपनी है तो राहदारी की क्या जरूरत है।'

राष्ट्रकवि श्रद्धेय श्री सोहनलाल द्विवेदी जी ने प्रस्तुत गीत संकलन के विषय में जो लिखने का कष्ट किया है, इसके लिए मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ।

वसंत १९७७
बदायूँ

रमेश शेखर

समय के हस्ताक्षर

एक समय था
मुझे समझ नहीं थी,
मन के भीगे पत्र पर
किसी ने अजाने में
हस्ताक्षर कर दिए ——
दूसरे हस्ताक्षर
तीसरे हस्ताक्षर
लग गई अनेक रंगों के हस्ताक्षरों की भीड़
इन्द्रधनुषी जाल,

समय के साथ बढ़ गया मन का विस्तार
बढ़ता गया मन का भार
जब, चेत हुआ
मन सचेत हुआ
चाहा कि मन को लग जाए आग
या आ जाए कोई तूफानी सैलाब.
मन हो जाए पहले जैसा बेदाग
हस्ताक्षर हीन - - - -

यह [illegible] न हुआ,
हताश होकर मैंने
मन के पत्र पर
उलट दी एकाकीपन की सियाही
समा गए हैं उसमें हस्ताक्षर,

अब उस पर
किसी की सफेदी से
हस्ताक्षर करना है ।

— [illegible]

अनुक्रम

प्रारंभिक रचनाएँ

हर गीत तुम्हारा है

तुम मेरे गीत कभी न सुनो
तुम मेरे गीत कभी न पढ़ो
हर गीत तुम्हारे लिए लिखा, हर गीत तुम्हारा है
तुमसे कुछ बातें करने का बस यही सहारा है।

कलियुग-सी विरही रातों में, मैं गीत तुम्हारे लिखता हूँ
खजुराहो और अजंता-सी कल्पना तुम्हारी करता हूँ
मेरे कमरे के आस-पास कुछ परिचित जन भी रहते हैं
कुछ मेरा दुःख बँटाने की भावना हृदय में रखते हैं
कुछ से तो कृत्रिम दूरी है
कुछ की अपनी मजबूरी है
सारे आयोजन व्यर्थ लगे तब तुम्हें पुकारा है
हर गीत तुम्हारे लिए लिखा, हर गीत तुम्हारा है,

मैंने अपने जैसा सबका मन समझा सबको अपनाया
जितने हाथों के स्पर्श मिले सबने तन-मन को भरमाया
यह तो मेरा पीड़ित मन है जिसने दुख को सुख मान लिया
पथ पर चलने से पहले अपने साथी को पहचान लिया
मेरी पीड़ा मनभावन है
जीवन भर का संचित धन है
हर गीत मुझे अपने से प्यारे जग से प्यारा है
हर गीत तुम्हारे लिए लिखा, हर गीत तुम्हारा है,

जब सरिताका विश्वास मिले फिर इस-उस तटका बंधन क्या
हृदयों की सहमति होने पर माटी तन का अवगुंठन क्या
यह झूठी लोकलाज अपनी जीवन भर प्राण जलाएगी
यह आग जन्मतिथियों के दुहराने से क्या बुझ पाएगी
चढ़ता यौवन ढल जाने दो
संन्यासी-सा कल आने दो
जो सदा तरुण रहकर बहती वह जीवन-धारा है
हर गीत तुम्हारे लिए लिखा, हर गीत तुम्हारा है।

करुणा का आँचल

जब तक मुझ पर डालोगे करुणा का आँचल
तब तक तो मुझको मौत कफ़न दे जाएगी।

मेरी दुर्बलता सबको दुख देती आई
नाराज़ पड़ोसी आकर कफ़न उढ़ा देंगे
जिनसे न उमर भर नमस्कार भी हो पाई
वे भी अरथी श्मशान तलक पहुँचा देंगे
अंतिम दर्शन को कितने ही चेहरे होंगे
इस गुलाब-से मुखड़े की सुधि तड़पाएगी।

दुनियादारी की बातों में दिखलाने को
गंगाजल-पात्र निकट सिरहाने रख लेना
पर, अंत समय गंगाजल के मिस अधरों पर
निज अश्रुबिंदु कंपित पलकों से रख देना
पर, जब तक स्वाति-बिंदु देने तुम आओगे
तब तक मेरी हर प्यास स्वयं बुझ जाएगी।

उस जन्म बयाना देकर मेरे जीवन का
इस जन्म हृदय-कोषों पर लगी मुहर रक्खी
तुम प्रीति बयाना देकर हो खामोश गए
अब और किसी ग्राहक से बात नहीं होगी
यदि बिकना ही होगा मुझको इस जीवन में
सारी दुनिया मिलकर न मोल दे पाएगी।

थोड़े से जीवन को लग गए रोग इतने
लगता है मेरी आयु बहुत घट जाएगी
मैं तुमसे कई वर्ष पहले मर जाऊँगा
तब तक जैसे भी कटे उमर कट जाएगी
जब तक तुम गले लगाकर मिलने आओगे
मेरी बाँहों में शक्ति नहीं रह पाएगी।

यह जन्म अकारथ अगर हुआ तो जनम-जनम
चिर सहचर या सपूत बन प्यार चुका दूँगा
सीधा संयोग न हो तो किसी पड़ोसिन का
बालक बन आकर पास तुम्हारे खेलूँगा
पथ में कैसी भी भूलभुलैयाँ हों, लेकिन
प्राणों की लगन मुझे तुम तक पहुँचाएगी।

पीड़ा दे जाते हैं

निशदिन जीवन में कितने ही आकर्षण आते हैं,
अपने बनकर सपने बनकर पीड़ा दे जाते हैं।

बचपन के कितने ही साथी कैसे-कैसे प्यारे
जब चोट किसी को लगी हुए व्याकुल साथी सारे
बचपन की क्यारी भरी, जवानी के गुलाब झूमे
नज़रों में रखने लगे हमें अभिभावक बेचारे

हम वर्तमान के आकर्षण में सुख पाएँ कैसे,
जीवन भर पहली प्रीति-रीति के दिन तड़पाते हैं।

'सतफेरों' से जीवन-गति के कुछ अर्थ मिटा डाले
'सतिधर्म' नाम पर तन के मधुमय सुमन जला डाले
'वैधव्य' बता अधरों के मुखरित गीत दबा डाले
'नैतिकता' के नामों पर काले नियम बना डाले

जगने कुछ पीड़ाएँ सरजीं उपचार नहीं माना,
हम ऐसी ही पीड़ाओं को आदर्श बताते हैं।

सच है कि प्रकृति के नियमों ने हम पर उपकार किए
पर, दुनिया ने हम पर गिन-गिन कर अत्याचार किए
सब कुछ खोकर सौ यत्नों से कुछ दिन तो जी लेते
जग ने न किसी का सुख देखा, दुख देकर प्राण लिए

चुभ जाता है कुछ ऐसा एकाकीपन जीवन में
अपनेपन से बेगाने भी अपने कहलाते हैं।

अधूरी प्यास

अभी न तुमने दर्द लिया है मन भी नहीं उदास है,
अभी न माँगो सागर-सरिता अभी अधूरी प्यास है।

अभी तुम्हारी चाह समय की उठती-चढ़ती आँधी है
आग नहीं ध्रुव सत्य तुम्हारी एक क्षणिक चिनगारी है
अभी रिवाजों के बंदीगृह में ही सुख पाते हो तुम
बँधे-बँधे पग से सीमित पथ पर आते-जाते हो तुम

अब तक अपनों से ज्यादा तुमको निज पर विश्वास है,
अभी न माँगो सागर-सरिता अभी अधूरी प्यास है।

मन कितना ही सावधान हो पर, चोरी हो जाती है
सुंदर मन को लाख बचाओ बरजोरी हो जाती है
जब तक हृदय न टूटे जीवन का शृंगार नहीं होता
अपने सुख की अभिलाषा हो ऐसे प्यार नहीं होता

अभी तुम्हें अपने चहुँदिश लगता हँसता मधुमास है,
अभी न माँगो सागर-सरिता अभी अधूरी प्यास है।

प्रिय के सुख की खातिर जीवन भर विष पीना होता है
जीना मुश्किल हो जाता है फिर भी जीना होता है
रो देने की बातें हों तो भी मुस्काना होता है
उपकारों के बदले अपराधी कहलाना होता है

प्यार नहीं छोटी घटना है बहुत बड़ा इतिहास है,
अभी न माँगो सागर-सरिता अभी अधूरी प्यास है।

कलियाँ मधुवन की

कैसे पीर घटे तन-मन की
कैसे चाह करूँ जीवन की
मैंने प्राण दिए मधुऋतु को चुभती हैं कलियाँ मधुवन की ।

आदिपुरुष के मन की ज्वाला मानव-मन की प्यास बन गई
जन्म-जन्म से यही प्यास जनजीवन का इतिहास बन गई

प्रेम-अग्नि में जीवन-आहुति देकर लगन लगी मधु-घट की
अंतर्दाह बुझी न बुझाए, राह रुकी पनघट-पनघट की
माना सदा नियम संयम को
प्रति पल धोखा दिया स्वयं को
लाज सभी को रखनी होती है सामाजिक अनुशासन की
मैंने प्राण दिए मधुऋतु को चुभती हैं कलियाँ मधुवन की ।

मदिर कंठ-स्वर, मदमाते दृग, नैतिक प्रवचन, कवि सम्मेलन
सभी ओर मनमोहक घेरे बनते रहे चहेते बंधन
नगर-नगर जीवन उलझाकर, डगर-डगर से प्यार बढ़ाकर
लम्बी उमर गँवाई सूनेपन में गंध-सुगंध लुटाकर
साथ निभाने के क्षण आए
मेरे सहगामी अलसाए
मैंने नयन-नयन दुलराए, मिली न झाँकी अपनेपन की
मैंने प्राण दिए मधुऋतु को चुभती हैं कलियाँ मधुवन की ।

ऐसे शब्द नहीं मिलते हैं जिनमें अपना दुख लिख डालूँ
ऐसी आशा बँधी न कोई जिससे कुछ मन को बहला लूँ
मन दुनिया से ऊब गया है ऐसे दिन अक्सर आए हैं
सारा जीवन व्यर्थ लगा है ऐसे भी अवसर आए हैं
फूल मुझे रसहीन कहेंगे
काँटे साहसहीन कहेंगे
सुननेवाला ही न सुने तो किससे कह दूँ बातें मन की
मैंने प्राण दिए मधुऋतु को चुभती हैं कलियाँ मधुवन की ।

कुछ संबंध

मिलते नए-नए शुभचिंतक
बनते बड़े-बड़े अभिभावक
किंतु, समय पर जब पुकारता अंतर्ध्यान सभी होते हैं,
कुछ संबंध सँजोनेवाले जीने का निश्चय देते हैं।

संभव है नासमझी के दिन दो दिन का अपयश दे जाएँ
इसका अर्थ नहीं दो दिन सारे जीवन का सुख ले जाएँ

जीवन में अनगिन बातें हैं मन किस-किसको भूल सकेगा
दीवाली के शत-शत दीपक, एक बुझे तो एक जलेगा
व्याकुल मन से लिखे गए जो
विह्वल मन से पढ़े गए जो
उन पत्रों के संबोधन अब भी आशीष अभय देते हैं,
कुछ संबंध सँजोनेवाले जीने का निश्चय देते हैं।

परिवर्तन है रीति जगत की रोज यहाँ सभ्यता बदलती
तन-मन के संबंध बदलते, धर्म-कर्म मान्यता बदलती
यादों के श्मशान मुझे हैं शीतल चंदन-चंद्रअटारी
जिस आँचल में यौवन बीते उस पर जनम-जनम बलिहारी
रीति-रिवाज बहुत ऐसे हैं
खुलकर लोग गले मिलते हैं
ऐसे मीत बहुत कम होंगे जो संपूर्ण हृदय देते हैं,
कुछ संबंध सँजोनेवाले जीने का निश्चय देते हैं।

भोले-सीधे लोगों को टेढ़े-मेढ़े रस्ते मिलते हैं
शूलों की साज़िश के कारण फूल बहुत सस्ते बिकते हैं
सरल नयन के लिए रँगीले काँच रत्न बनते देखे हैं
पाषाणों में कोमल सपने अधिक समय किसने देखे हैं
मंगलद्वार न हों तो भी क्या
वंदनवार न हों तो भी क्या
गहरी नींवों वाले खंडहर भी सदियों आश्रय देते हैं,
कुछ संबंध सँजोनेवाले जीने का निश्चय देते हैं।

एक रतन मिल जाए

सुखद सृजन बंधन मिल जाए
रसविभोर तन-मन मिल जाए
कितने आकर्षक चेहरे हैं, कोई शुभदर्शन मिल जाए,
पाषाणों की बस्ती में संभव है एक रतन मिल जाए।

सब कुछ जाए, मन मिल जाए
मधुवन नहीं, सुमन मिल जाए
प्रिय आँचल की छाँह न छोड़ूँ
चाहे मुझे भुवन मिल जाए
जब तक कोई दर्द न देगा
मन का सुमन नहीं महकेगा
आत्मसमर्पण से ढूँढो तो शुभचिंतक सज्जन मिल जाए,
पाषाणों की बस्ती में संभव है एक रतन मिल जाए।

रस न मिला फागुन सावन का
जन्म रहा बंधक संयम का
वैरागी का रैन बसेरा
फूलों पर आँचल शबनम का
हृदय-हृदय हो प्रीतम-जोगी
कहीं न कोई रहे वियोगी

चिर आशामय हँसते नयनों को निर्मल दर्पन मिल जाए,
पाषाणों की बस्ती में संभव है एक रतन मिल जाए।

मैं न किसी को प्यासा छोड़ूँ
नीर पिला घट रीता कर लूँ
जब सत्संग मिले सागर का
प्यासों के रीते घट भर दूँ
मुझसे जो कुछ चाहो ले लो
तुम जो दे सकते हो दे दो
बहुत पास तक दूरी घटने का समुचित कारण मिल जाए,
पाषाणों की बस्ती में संभव है एक रतन मिल जाए।

जीवन में यदि स्नेह न उपजे
उपवन में यदि पवन न महके
सारी सृष्टि व्यर्थ हो जाए
आँख कभी सौंदर्य न समझे
मन की प्रीति-सुगंध लुटादो
रस में सारी सृष्टि डुबादो
सब धरती मलयागिरि हो, हर बगिया को चंदन मिल जाए,
पाषाणों की बस्ती में संभव है एक रतन मिल जाए।

भरे-पुरे मन की गहराई
मैंने जग से बहुत छिपाई
यह सौभाग्य कि लूट ले गई
भोले मुखड़े की चतुराई
मन का मीत परखना होगा
असली चोर पकड़ना होगा
बचपन से यौवन तक जीवन का जो हुआ गबन मिल जाए,
पाषाणों की बस्ती में संभव है एक रतन मिल जाए।

सबका मन

सबका मन कोमल होता है
सबका मन चंचल होता है
तन-मन की कुछ हार-जीत है जिससे निबल सबल होता है,
चेहरे का कुछ दोष न हो तो हर दर्पण निर्मल होता है।

मैं तो ऐसा दर्द न लूँगा जिससे कुछ निर्माण न हो
वह उत्तरदायित्व न देना जिस पर मुझे गुमान न हो
अनगिन परिचय, किंतु लाभ क्या, यदि मन से पहचान न हो
ऐसी भक्ति नहीं करता हूँ जिसका साथी ज्ञान न हो

कितने प्रेमी, प्रेम कथाएँ
सबको अपनी मर्यादाएँ

जो प्रेमी निर्माण नहीं करता है वह पागल होता है ।

जो न दुखी का दुख पहचाने वह रिश्ता क्या रिश्ता है
तन मन को तन मन से बाँधे वह अपना बन सकता है
यों तो दुनियाँ में, समाज में सभी तरह के रिश्ते हैं
असमय में भी प्रीति निभाएँ वे ही अपने लगते हैं

ऐसे भी मधुकलश मिले हैं
जो अधरों से दूर रहे हैं

जो प्यासे की प्यास बढ़ाए वह सागर मरुथल होता है ।

प्रिय का मन है तृषित गगन-सा मेरे मन, बादल बन जा
ओ मेरे पथ के अँधियारे ! प्रिय-दृग का काजल बन जा
दूषित वातावरण, प्रिया तक मन की बात नहीं जाती
चिंता मत कर रे मन, कोई बाधा व्यर्थ नहीं आती

गीत, जिसे स्वर मिल न सका हो
वह स्वर जिसे न साज़ मिला हो

वह स्वरगीत किसी देवी के चरणों की पायल होता है ।

वर्तमान अपना है

आओ, कुछ संबंध बनाएँ
जीवन को समझें-समझाएँ
वर्तमान अपना है, कल जाने क्या से क्या हो जाएगा,
प्रतिदिन ज्यामिति की कृतियों-सा मन का कोण बदल जाएगा।

जिससे मिलने की अभिलाषा उससे आँख नहीं मिल पाती
जो घर-आँगन को महकाए ऐसी कली नहीं खिल पाती
बनावटी फूलों का युग है मन के सुमन अधिक महकाओ,
संभव हो तो कुछ फूलों को मेरे दामन में रख जाओ
पल-पल परिवर्तन आता है
असमय समय निकल जाता है
जिसके लिए प्राण अकुलाते वही प्रसंग बदल जाएगा,
वर्तमान अपना है, कल जाने क्या से क्या हो जाएगा।

आरोपित अनुबंध हृदय का ईश्वरीय आदेश नहीं है
नियमों की संस्थाओं का कोई निश्चित निर्देश नहीं है
दरवाजे पर दस्तक देना बंद करो, घर में आ जाओ,
मन की चुटकीभर माटी का अनभोगा सौभाग्य जगाओ

मेरी सारी खुशियाँ ले लो
कुछ मधुमय स्वीकृतियाँ दे दो

मन तो शिशु-सा सहज सरल है बातों-बात बहल जाएगा,
वर्तमान अपना है, कल जाने क्या से क्या हो जाएगा।

झूठी मर्यादाएँ रखकर आज चरित्र रचा जाता है
मनके पापी को चेहरे से देख पवित्र कहा जाता है
यदि अपात्र को मन दे डाला है तो मन वापस कर लेना
यदि मन का मुखड़ा न दिखाए तो दर्पण वापस कर देना

हर अपात्र मन बहलाएगा
मन को चैन न दे पाएगा

चिता-अग्नि से पहले ही मन चिंताओं में जल जाएगा,
वर्तमान अपना है, कल जाने क्या से क्या हो जाएगा।

मुझको कोई वचन न देना, वचन टूट जाना संभव है
लोकचलन की सीमाओं पर साथ छूट जाना संभव है
मैं न किसी से आस रखूँगा, अपनी पीड़ाएँ सह लूँगा,
समय मिला तो सृजनहार से मन का सारा दुख कह दूँगा,

नए-नए अनुभव मिलने दो
सुखद शूल चुभते रहने दो

तन-मन को महकाओ, गहरा काँटा स्वयं निकल जाएगा।
वर्तमान अपना है, कल जाने क्या से क्या हो जाएगा।

ममतामय संसार तुम्हारा

मिला अछूता प्यार तुम्हारा
पूजूँ मंगलद्वार तुम्हारा
मेरे प्राणों से लिपटा है ममतामय संसार तुम्हारा
रोम-रोम पर लिख डाला है जनम-जनम अधिकार तुम्हारा।

जिस दिन तुम से विलग हुआ था मेरी गति अतिशय चंचल थी
तन-मन में ऐसी भावुकता, उस जीवन से मृत्यु सरल थी
जीवन-दर्शन, ज्ञान-ध्यान डूबे उस पल भर की पीड़ा में
मेरी और तुम्हारी प्रतिभा ढलका-ढलका-सा काजल थी

जग ने छीना, मैं लौटाऊँगा नैतिक अधिकार तुम्हारा,
मेरे प्राणों से लिपटा है ममतामय संसार तुम्हारा।

मेरा मन वैरागी बनकर छोड़ चुका था दुनियादारी
आह, तुम्हारा रूपसुदर्शन, बना गया मुझको संसारी
वर्षों से सूने मधुवन की महक उठी है क्यारी-क्यारी
पहले अपना घर प्यारा था, अब है सारी धरती प्यारी

मुझ दुर्बल को बल देता है नारी-मन अविकार तुम्हारा,
मेरे प्राणों से लिपटा है ममतामय संसार तुम्हारा।

गुप्त मर्म क्या बतलाए, साधारण सत्य छिपाया जगने
कितने जन्मों से जीवन को असफल किया, पिया विष सबने
झूठे बंधन, बँधे चलन को खंडित पाया हमने-तुमने
आओ, सपनों को उजलाएँ, मिले हमें सब धुँधले सपने

मेरे कारण दोष बना था सामाजिक व्यवहार तुम्हारा,
मेरे प्राणों से लिपटा है ममतामय संसार तुम्हारा।

जब तुम मुझसे निकट हुई थीं शरमाई-सी थीं इच्छाएँ
थी सारे जीवन की चिंता घबराई-सी थीं आशाएँ
ईश्वर को, तुमको, अपने को धन्यवाद है तुम मेरी हो
जो पथ हमसे छूट गया था आओ, उस पथ पर आजाएँ

शेष आयु के लिए मोक्ष है मेरे मन में प्यार तुम्हारा,
मेरे प्राणों से लिपटा है ममतामय संसार तुम्हारा।

समय का समाधान

किसे नयन से दूर रखूँ
किसे हृदय से लिपटाऊँ
मुझे मिलन-पल भी प्यारे हैं, विरही युग भी प्यारा है,
जिसमें मुख देखा है वह टूटा दर्पन भी प्यारा है।

रनिवासों के घन-घेरे में मन गरीब का कमरा है
आस-पास के संदेशों से मेरा सुख-दुख दुहरा है
जाने कितने जन्मों का आदान-प्रदान चुकाना है
किंतु, हृदय के ठेकेदारों का नज़रों पर पहरा है

भरी गगरिया प्यासी है
पनघट तीर उदासी है

अंबर बरसे, आँगन तरसे, यह सावन भी प्यारा है।
जिसमें मुख देखा है वह टूटा दर्पन भी प्यारा है।

जिधर आँख उठ गई खिसकता-सा अवगुंठन पाया है
छिपे-छिपे हर दृढ़ अवगुंठन में आवाहन पाया है
मैंने रूप-तीर्थ में जलकर क्या अपराध किया बोलो,
इस तन ने चंदन-सी बाँहों का अभिनंदन पाया है

आए प्रिय जन नए-नए
हृदय मिलाकर चले गए

पद-चिह्नों की पंक्ति रह गई, यह निर्जन भी प्यारा है,
जिसमें मुख देखा है वह टूटा दर्पन भी प्यारा है।

वर्षों की दूरी से कोई मन से दूर नहीं होता
शहरों की दूरी से कोई तन से दूर नहीं होता
दरस-परस के भावचित्र जीवनभर बातें करते हैं
बचपनवाला स्नेह किसी बंधन से दूर नहीं होता

मेरा सुख-दुख न्यारा है
हर चिंतन उजियारा है

चढ़ता यौवन प्यारा है, ढलता यौवन भी प्यारा है,
जिसमें मुख देखा है वह टूटा दर्पन भी प्यारा है।

मेरी रचना

मुझसे ऐसी भी कोई रचना हो जाए
जीवन से रूठे मन को वापस ले आए।

दूर शहर से, कमरे में एकाकी रहकर
मानव के पागलपन की जोखिम लेना है
इसीलिए मैं चहल-पहल में खो जाता हूँ
वरना इस दुनिया में क्या लेना-देना है!

संत्रासों के सर्प हृदय पर रेंग रहे हैं
साहस करके पीड़ित भाव गरुड़ बन जाए,
जीवन से रूठे मन को वापस ले आए।

संबंधों पर प्रतिबंधों के ताने-बाने
घर-घर सरजे गए प्रीति के बंदीखाने
अनुचित, उचित कहाँ, क्या, कितना, कौन बताए ?
सृष्टि-दिवस से अब तक भेद रहे अनजाने
पाप-पुण्य की उलझन स्वयं निकल जाएगी
भावुक ज्ञानी हो, ज्ञानी भावुक हो जाए,
जीवन से रूठे मन को वापस ले आए।

झूठे विश्वासों के गीत नहीं गाऊँगा
कृत्रिम सीमाओं के पार चला जाऊँगा
अंधी श्रद्धाओं के जाल बिछानेवालो,
मरते-मरते सब छल-छंद मिटा जाऊँगा
मैंने बहुत निकट से पीड़ा को समझा है
जग की असहनीय पीड़ा मुझको मिल जाए।
जीवन से रूठे मन को वापस ले आए।

मैंने दुख स्वीकार किए साहसी चलन के
कायर बनकर नहीं लिए सौ सुख जीवन के
मूरख दुनिया से क्योंकर भयभीत रहूँ मैं
मुझको जीना है सबका शुभचिंतक बनके
मेरे अति साहस की आलोचना करो तुम,
दुर्बल लोगों में भी कुछ साहस आ जाए,
जीवन से रूठे मन को वापस ले आए।

समतल राहें

अब कैसे पार करूँ ऊँची-नीची गलियाँ
मैंने समतल राहों में ठोकर खाई है।

मिलनेवाला जीवन में कुछ इस तरह मिला
ज्यों तंग गली में बचते-बचते छू जाए
कुछ तन, मन ऐसी भी सुविधा से टकराए
जिनकी पीड़ा का मरहम कहीं न मिल पाए

किसने की कैसी भूल प्यार में सर्वप्रथम ?
हर प्रेमी को दुख मिलने का बन गया नियम

मेरी भीगी पलकों से कोई क्यों उलझे !
सागर से ज्यादह आँसू की गहराई है।

मुझको प्रिय मित्रों ने ठुकराकर छोड़ा है
इस भरे विश्व में शून्य गगन मेरा मन है
मेरे दुख की रचना पर कोई दुख न करे
दुख—निजको स्वयं देख लेने का दर्पन है
प्रेमी पीड़ा का वंशज माना जाता है
असफल प्रेमी शूली पर सेज सजाता है
अपने सुख के भ्रम में मुझसे जो बिछड़ गए
सुख जिएँ, सुखी जीवन पर उन्हें बधाई है।

मैं अपनी आत्मव्यथा खुद रचकर आया हूँ
पीड़ाओं से मैं कभी नहीं घबराया हूँ
जितनी त्रुटियाँ उतना ही ज्ञान मिला मुझको
पथरीले ढेरों से मोती चुन लाया हूँ
अपने प्रति मित्रों की पीड़ा से परिचित हूँ
कुछ ऐसा दर्द मिला जिससे मैं जीवित हूँ
यह किसके द्वार महकती वंदनवार सजी
किसके घर-आँगन में मेरी पहुनाई है।

फिर किसके मादक यौवन ने मुझको देखा
मेरी मधु-प्याली में मादक दृग की छाया
किस-किस आलिंगन की माया ममता साधूँ
मन के सागर में नदी-नदी का जल आया
सब स्नेहपत्र, सब मिलन, वचन झूठे-झूठे
वरदानों के सब विज्ञापन झूठे-झूठे
फिर मेरे अंतर का सोया उन्माद जगा
फिर मादक दृश्यों को आई अँगड़ाई है।

प्रश्नों की भीड़

प्रश्नों की भीड़ और मैं घिरा अकेला
सभी ओर भाँति-भाँति प्रश्नों का मेला ।

आँसू की वर्षा से देह वृक्ष सींचे
पिघला इस्पात दबा फूलों के नीचे

हार गई आग भला फूलों से कैसे ?
दोनों पर दोष लगे प्रश्न नए उपजे

अधर-अधर प्रश्न, नयन-नयन व्यंग तीखे,
सबने फिर प्रश्नों की भीड़ में धकेला।

डगर-डगर, पग-पग, अँधियारे, उजियारे
प्रश्नों के सर्प मिले कुंडलियाँ मारे
चाहा तो प्रश्न सभी तन-मन में रख लूँ
समय-समय सुविधा से सबका उत्तर दूँ

जीवन भर ऐसा कुछ खेल गया खेला,
बीत चली हार-जीत निर्णय की बेला।

कितने ही मौसम दुविधाओं में बीते
सुख-दुख अनकहे रहे, चिंतन अनचीते
घृणा और प्यार मिले किंतु, सब अधूरे
बेदर्दी पनघट पर कलश रहे रीते

कभी-कभी सोचा कुछ पाकर कुछ दे दूँ,
लेकिन, जीवन निकला मिट्टी का ढेला !

बँधे-सधे पुण्यों से पीड़ा घिर आई
मुक्तहस्त पापों ने पीड़ा सहलाई
मैंने कुछ पाप किए वीरोचित मन से
भोगा आदर्श नरक हर्षित तन-मन से

मैं तो दोषी हूँ, अब तुम ही कुछ सोचो,
आओ, तय करें पाप-पुण्य का झमेला।

वक्त की डगर

वक्त की मुश्किल डगर है
दर्द से बोझिल उमर है
लक्ष्य जिसका कुछ न हो उस राह पर चलना नहीं है।

दोष है वातावरण का, हर तरह निर्दोष हैं हम
भागकर जाएँ कहाँ तक, हर तरफ रंगीन मौसम

जन्म की हर वासना पर हम सदा मरते रहे हैं
दूसरों के दर्द की आलोचना करते रहे हैं
हर नियंत्रण सामयिक है
हर समस्या मानसिक है
जो नियम रहते नहीं उनके लिए मरना नहीं है,
लक्ष्य जिसका कुछ न हो उस राह पर चलना नहीं है।

किस दशा में क्या करें, उत्तर नहीं इसका सरल है
एक दिन जीना कठिन है, एक दिन मरना कठिन है
हर परिस्थिति का हमें सत्कार करना ही पड़ेगा
डूबकर मझधार में तट पर उभरना ही पड़ेगा
प्यार है नेता हमारा
दर्द अभिनेता हमारा
भूमिका कोई मिले दायित्व से बचना नहीं है,
लक्ष्य जिसका कुछ न हो उस राह पर चलना नहीं है।

प्यार ऐसा दर्द, जिसमें चोट भी, उपचार भी है
बंद हैं कुछ द्वार, कुछ पर स्वागतम्-मनुहार भी है
पुष्प-सा जीवन कि जिसमें कुछ सजीले शूल भी हैं
सौ तरह की कामनाएँ रोज मरती-जन्मती हैं
रूप क्या है आदमी का
मोल क्या है जिंदगी का
तन किसी का, मन किसी का, कुछ यहाँ अपना नहीं है,
लक्ष्य जिसका कुछ न हो उस राह पर चलना नहीं है।

हृदय की पीर

धरा के सब किनारों तक
गगन के चाँद-तारों तक
हृदयवाले जहाँ भी हैं हृदय की पीर जाती है,
जहाँ तक पीर जाती है बहुत गंभीर जाती है।

हृदय का साधना मुश्किल, लहर का बाँधना मुश्किल,
प्रणय में आत्मसंयम के नियम का पालना मुश्किल,
सुमन-सा मन किन्हीं चंदनचरण को पूजना होगा
समय के दर्द का मरहम कहीं तो ढूँढना होगा
नयन पर लाख पहरे हों
हृदय में घाव गहरे हों
जिधर भी प्रीति जाती है उधर सशरीर जाती है,
जहाँ तक पीर जाती है बहुत गंभीर जाती है।

जिसे मैं रक्त देता हूँ वह परती कैसे छोड़ूँगा
जहाँ मैं स्वर्ग रचता हूँ वह धरती कैसे छोड़ूँगा
निराशाओं के भय से रास्ता छोड़ा नहीं जाता
हो आशा की किरन कोई तो दिल तोड़ा नहीं जाता
चमन हों या कि वीराने
सुरंगें या कि तहखाने
सभी से आगे-आगे प्यार की जागीर जाती है,
जहाँ तक पीर जाती है बहुत गंभीर जाती है।

सुना है—सुख उठाना है तो भावों का दमन करदो
कि जिसका अर्थ है—अपराध करके खुदकशी करलो
है भावों का दमन करना ज़हर खाना जवानी में
यह अति गंभीर दुर्घटना है मानव की कहानी में
मनुज है मित्र आशा का
मनुज है पुत्र इच्छा का
उलटती-फेरती इंसान की तकदीर जाती है,
जहाँ तक पीर जाती है बहुत गंभीर जाती है।

यह दुनिया है यहाँ हर तरह का व्यापार होता है
किसी का पाप होता है किसी का शीश ढोता है
निराशाएँ हों अपनों से तो कुछ अच्छा नहीं लगता
मगर अपने भी ऐसे हैं कि जिनसे दिल नहीं भरता
बहुत कुछ देखना होगा
बहुत कुछ सोचना होगा
ख़यालों से भी आगे प्यार की तहरीर जाती है,
जहाँ तक पीर जाती है बहुत गंभीर जाती है।

निर्मम संदर्भ

निर्मम संदर्भ बहुत आते हैं याद,
इर्द-गिर्द मँडराते टूटे संवाद ।

आती है रोज़-रोज़ दर्दीली शाम
उजड़े बस जाते हैं भावों के ग्राम

आती है साँसों में सुधियों की गंध
बार-बार जुड़ते हैं टूटे संबंध
शहरीली भीड़ और मेल-मुलाकात
ऐसी कुछ व्यस्तता कि कुछ न रहे याद ।

संशय की डोरी में बोझिल संकल्प
खींच रहे तार-तार दोहरे विकल्प
साधें संकल्प मृदुल बलशाली हाथ
दे पाएँ संशय को निश्चय का साथ
आज भले युक्ति सरल आ जाए काम
मन जाने कैसा हो वर्षों के बाद ।

यों तो हैं भेद भरे मन के व्यापार
मन हो तब खुलते हैं नए-नए द्वार
होता है जब कोई मनचाहा संग
सब कुछ अपनाते हैं बँधे-सधे अंग
ढीले अनुबंधों से होता संताप
टूक-टूक होती है संचित मर्याद ।

समय निकल जाने पर आता है होश
दोष उम्र का है या मन है मदहोश
समय-समय घटे-बढ़े मन के आयाम
एक चाह रखती है कितने शुभनाम
नाम सभी छूट रहे होकर बदनाम
शेष रहा मित्रों का परिचय-उन्माद ।

प्रिय बंधन

प्रियतम के बंधन में
सुख के अभिनंदन में
तन चाहे जैसा हो मन उजला होता है
प्रेमी की बाँहों में स्वर्ग रचा होता है ।
कटती हैं विरहा की पल-पल लंबी रातें
बनतीं इतिहास बड़ा छोटी-छोटी बातें

प्रीतिमयी इच्छा को शब्द अगर मिल जाते
रोज नए जीवन के शोधग्रंथ लिख जाते
बेबस पीड़ाओं में
गहरी चिंताओं में
छोटे-से मन में संसार बड़ा होता है।

याद नहीं पुष्प कि जो दो दिन में मुरझाए
यादों ने जीवनभर जन्म-भुवन महकाए
दिनभर हम व्यस्त रहे उत्तरदायित्वों में
इसका यह पुरस्कार रात कटी आँखों में
नीरवता रहने दो
व्याकुलता सहने दो
मौन अचल अधरों पर मर्म लिखा होता है।

जीवन में सहधर्मी चिंता जब आती है
प्राणों में सहभोगी धड़कन आ जाती है
आते ही उचित समय पाषाणी पिघलेगी
पीड़ा से रच-रच कर आवेदन भेजेगी
चाहे सौ फेरे हों
शूलों के घेरे हों
दूर कहीं आँचल का छोर बँधा होता है।

चाहो तो मेरे घर मधु के घट ले आना
उचित नहीं छलके बिन घट वापस ले जाना
प्रिय-पग तल प्रेमी का उर-सागर बहता है
सागर पर झुके बिना कलश नहीं भरता है
तट से यों खेलो मत
लहरों को छेड़ो मत
कहीं-कहीं तट पर भी जल गहरा होता है।

प्यार का सम्मान

मुफ्त मिले प्यार का न होता सम्मान
इसीलिए धरती पर जन्मा बलिदान।

प्राणों की वीणा के कसे नहीं तार
भावों की नगरी के हिलते घर-द्वार
घूम गए सतफेरे, मनमें उलझन
कौन किसे ब्याहा ? यह प्रश्न है कठिन

चिंता-व्याकुलता में मनु की संतान
श्रद्धा-सी नारी की करले पहचान,
इसीलिए धरती पर जन्मा बलिदान।

फूलों के साथ मिला शूलों का प्यार
सारी फुलबगिया का मुझपर उपकार
कोरे आदर्शों से सधा नहीं मन
घबराकर सौंप दिया प्रियतम को तन

त्याग बिना मिलता यदि प्रिय का सम्मान
मन में आजाता सामंती अभिमान,
इसीलिए धरती पर जन्मा बलिदान।

प्रेमी के तन में हो हंसों का ज्ञान
कलियों की मादकता, मधुपों का गान,
चातक की व्याकुलता, हिरनी-सा तन,
तितली की चंचलता, फूलों-सा मन,

रहता उत्प्रेक्षा पर उपमा का ध्यान
सारी उपमाएँ बन जातीं उपमान,
इसीलिए धरती पर जन्मा बलिदान।

मजहब या पंथ कहें, उद्गम है एक
लेकिन अज्ञानी की हठधर्मी टेक
कबिरा ने सीधे कर उल्टे दर्पन
जन-जन को दर्शाया जीवन-दर्शन

पूरा हो कान्हामय मीरा का ध्यान
'मानुस हौं' जनम-जनम लिक्खे रसखान,
इसीलिए धरती पर जन्मा बलिदान।

बातें मधुमास की

करते हैं पात झरे बातें मधुमास की
बारी फिर आएगी मधुमय वातास की।

अभिभावक प्रस्तुत है—ऊँघ रहा समरस है
मधुवन की लता-लता नंगी है, नीरस है
आगामी फसलों का बीज अभी रक्षित है
पतझर की बगिया भी हम सब की पूजित है
भाव जरा करवट लें
जीवन की गति बदलें

उलट चले भूमि अटल युग के अविकास की,
करते हैं पात झरे बातें मधुमास की।

नारी की दुर्बलता—पुरुषों में दोष पले
पीढ़ी से पीढ़ी तक दोषों के कोष चले
दाता तो नारी है नर क्यों कहलाता है
दोनों का दोनों से उलट गया नाता है
देवी फिर बोल उठी
साहस फिर तोल उठी
पुत्तलिका नहीं वसन, भोजन, आवास की,
करते हैं पात झरे बातें मधुमास की।

गौतम की ऋतंभरा, जातक की परंपरा
पाँख-पाँख झुलस गई पपीहरा यशोधरा
बुद्धं पद-शरण कहाँ ! धर्मम्-अनुकरण कहाँ !
पड़ते हैं पौरुष के पथस्खलित चरण कहाँ !
जगती से राग नहीं
पूरा वैराग नहीं
भस्म करो मलिन देह झूठे संन्यास की,
करते हैं पात झरे बातें मधुमास की।

रामायण-लीला में रावण के अंग जले,
रावण की सेना के नगर-नगर शिविर लगे
सत्य छिपा कुछ भी हो कागज के खेलों में
मिल जाए 'राम' हमें ऐसे ही मेलों में
दुर्जन - संहारक हो
जन - जन उद्धारक हो
कट जाएँ सब कड़ियाँ युग के संत्रास की,
करते हैं पात झरे बातें मधुमास की।

एक रात और

महुए की छाया में एक रात और सही
बातों की सुविधा में एक बात और सही।

महुए की छाया का करता हूँ अभिनंदन
नस-नस को बाँध रहे दरस-परस के बंधन
ज्ञात किसे, समय कहाँ, जाने कब आना हो,
इससे क्या लाभ सुबह जाकर पछताना हो
मित्रों की मनमानी
अपनी भी नादानी
हर बिसात उलट गई इक बिसात और सही,
महुए की छाया में एक रात और सही।

कितनी पीड़ाओं से यौवन-धन मिलता है
रोम-रोम मधुपों का मधुगुंजन मिलता है
अपनों के सपनों में मधुगुंजन बीत गया
अपना ही आयोजन अपने विपरीत गया
कुछ तो विश्राम मिले
विष ही का जाम मिले
टूटे तन-प्राण एक वारदात और सही,
महुए की छाया में एक रात और सही।

रह-रहकर दुखती छाती पत्थर ढोती है
माँग सहज होती है, पूर्ति कठिन होती है
नियमों की छाया में प्रीति लुटी जाती है
फिर भी हम खुश हैं यह अपनी ही छाती है
बिरवा की छाँह तले
सारे अरमान पले
डाल-डाल घूम चुके पात-पात और सही,
महुए की छाया में एक रात और सही।

एक रात रुकने से कितने युग निकल गए
रोज नए चेहरे हैं, परिचय हैं नए-नए
परिचयसे कुछ न मिला परिचित अनजान रहे
मेले तो बहुत जुड़े, डेरे वीरान रहे
शायद फिर मेले हों
और हम अकेले हों
बारातें लुटीं सभी यह बरात और सही,
महुए की छाया में एक रात और सही।

यूँ तो जग अपना है, पर इकले रहना है
मैंने दुख-दर्दों का राजमुकुट पहना है
जीवन-धारा में सब साधें बह जाएँगी
यौवन की कुछ मीठी यादें रह जाएँगी
कुछ पल सो लेने दो
अर्पित हो लेने दो
बहुत थका-हारा हूँ शुभप्रभात और सही,
महुए की छाया में एक रात और सही।

बन्द कमरा

खोलो सब खिड़कियाँ,
खोलो सब द्वार,
देखलें वसंत और सावनी फुहार।

कमरे में घुमड़ रही साँसों की गंध-घुटन
द्वारों की संधि-संधि टेर रहा मुक्त गगन
रंगीं दीवारों पर चित्रण आदर्शों का
तन में दुख पलता है मन के संघर्षों का
चिंतन की सीमा का करलें विस्तार
सारी व्याधाओं का होगा उपचार,
खोलो सब खिड़कियाँ, खोलो सब द्वार।

कमरे के द्वार तलक खिंचकर तुम आते हो
बाहर-भीतर की दुविधा में रह जाते हो
कोमल संबंधों पर बंधन जगवालों का
स्नेह बिना क्या होगा तन के कंकालों का
अपना मन रखने का सबका अधिकार
चलो, रचें धरती पर नए समाचार,
खोलो सब खिड़कियाँ, खोलो सब द्वार।

द्वार-द्वार समय खड़ा कुंडी खड़काता है
समय गए भीतर का प्राणी अकुलाता है
कमरे के ताले की चाबी यदि पा न सको
पिछवाड़े खिड़की से उपवन में उतर चलो
साहस के स्रोत बनें सुख का आधार,
दो दिन के जीवन का करलें सत्कार,
खोलों सब खिड़कियाँ, खोलो सब द्वार।

मनुज या दनुज

अभी बन सका न पूरा मनुज
अभी कुछ और चाहता दनुज
कि जिसका विध्वंसक अभियान
रख लिए मन चाहे अभिधान
न जाना अथसप्तक का षडज
लगा तारक-निषाद पर मीड़
जन गाता निशियाम
चकित है साम
हा राम !
आदि से स्वयं प्रशंसित मनुज
शांति की सरगम का भगवान

मिला मानस को आत्म प्रसार
प्रेम की प्यास, अश्रु की धार,
शूल की सेज, फूल की आग
अंत में देती अंतर दाग
कितना सुंदर त्याग
विरागी राग
समभाग।

हो गया भ्रमित अंश से पाप
मनुज में लज्जायुत संताप
अभावों भरा प्रभात-समीर
चतुर्दिग मिले व्यंग के तीर
गिरा बुद्धि-प्राचीर
हृदय को चीर
अति पीर !
विश्व में अर्थकाम मनु-पुत्र
सृष्टि-सीमा आश्चर्य महान।

मनुज के लिए मनुज की चोट
शूल की चुभन फूल की ओट
विषमता बुद्धि, चपलता द्वेष
नग्नता में सभ्यता विशेष
जनआह्वय आवेश
दुखित अखिलेश
बहु क्लेश !

कि उद्‌जनयुग का युग-विध्वंस
बना जाता है भू-अवतंस
बुद्धि के स्पुतनिक करते होड़
नहीं ला सके दृष्टि में मोड़
सम यथार्थ को तोड़
भाग्य को फोड़
भव छोड़ !
हमारे उपदेशक भी सहज
बन गए अपने से अनजान।
नहीं अनुशासित छाया-धूप
सृष्टि का बिगड़ा जाता रूप
बिछाया झूठ-कपट का टाट
मनुज अपने से स्वयं उचाट
खोलो नयन कपाट
कि देख विराट
ऋत् हाट ।
जन्मते-मरते नित विश्वास
इसी में घटते जाते श्वास
विषम भू-खंड कि सम अर्गला
मनुज बस एक अंश पर चला
संतापित हो गला
स्वयं को छला
मनचला ।
बन गए जाति, धर्म के सार्थ
मुक्ति के व्यापारी संस्थान।

मन का दर्द

तुमने जो मेरे मनको दर्द दिया है
तुमको भी प्रियवर, मिला कहीं तो होगा,
मनके गुमनाम पड़ोसी, सोते-जगते
आते-जाते उर मिला कहीं तो होगा।

तुमने शबनम को झरते कभी न देखा
पर, कलियों पर देखा रजनी का लेखा
भाँवर-फेरे होते हैं गँठबंधन में
जब बँधी और ही कहीं ब्याह की रेखा

माना, आँखों से मिलन-रेख अनदेखी
धरती से अंबर मिला कहीं तो होगा।

यों तो बादल पर्वत के बहुत सनेही
सब धरती से इनका परिचय होता है
आजादी से जब कहीं नहीं जा पाते
शबनम के मिस इनका अभिनय होता है

मरुथल में फूट पड़ी है जो हरियाली
बादल रुक-झुककर मिला कहीं तो होगा।

यदि जन्म-जन्म के नाते भूल न जाएँ
मनके नवीन संबंध नहीं चल पाएँ
प्रत्येक जन्मपर रिश्ते बदले जाते
कितने मुखड़े जाने-पहचाने जाएँ

अनदेखे दृश्य नहीं सपनों में आते
नयनों को अवसर मिला कहीं तो होगा।

प्रारंभिक रचनाएं

कभी-कभी आजाऊँ

मैं अनायास ही द्वार तुम्हारे आया
तुम बंधन में हो, कैसे दर्द सुनाऊँ
इसलिए मुझे कुछ चिह्न, निशानी दे दो
मैं बिना बुलाए कभी-कभी आजाऊँ।

निर्मल मन का सम्पर्क—सुखद आयोजन
साँसों से महका-महका है घर-आँगन
यह शुभ संयोग असाधारण घटना है
संयोग मात्र है जीवन भर का बंधन

प्रतिदिन जीवन की उलझन बढ़ जाती है
तुम ऐसी बनो कि किसी बहाने आऊँ,
मैं बिना बुलाए कभी-कभी आजाऊँ।

जब स्नेह तुम्हारा दर्द बनेगा मेरा
तन-मन के प्याले छलक-छलक जाएँगे
रसधार व्यर्थ हो गई अगर मरुथल में
हर मौसम में दुख के बादल छाएँगे

कुछ ऐसा करो—तुम्हारा बंधन पाकर
मैं बार-बार आने की राह बनाऊँ,
मैं बिना बुलाए कभी-कभी आजाऊँ।

हर नई राह से लक्ष्य प्राप्त करने में
जीवन की बड़े-बड़े झटके लगते हैं
मुझ थके बटोही के तन-मन से पूछो
मंजिल तक आने में जो दुख भुगते हैं

पथ में दरवाजे बहुत मिलेंगे, लेकिन
मैं इसी द्वार पर आकर शीश झुकाऊँ,
मैं बिना बुलाए कभी-कभी आजाऊँ।

परदेशी से कुछ लेना हो तो ले लो
क्या पता जमाना किधर मुझे ले जाए
अपने पथ की हर कठिनाई से कह दो
मेरे आने का पथ आसान बनाए

जो कुछ लेना हो मुक्त हृदय से बोलो
यदि पास नहीं अब है तो कल ले आऊँ,
मैं बिना बुलाए कभी-कभी आजाऊँ।

तुमसे बात नहीं हो पाई

जो थे दूर उन्हीं से मिलने बार-बार आई अँगड़ाई
तुम चलते थे देह सटाए तुमसे बात नहीं हो पाई।

पग-पग पर राहों में मेरे आगे चंचल भीड़ डट गई
जमघट इतने घिरे कि हर परछाईं जीवन से लिपट गई
सबको छूने दौड़ा, साँसें पलटीं लंबी उमर घट गई
सौ वर्षों की जीवन रचना लिखी जन्मसतसई कट गई
बहुत मिले माटी के पुतले
अंतर के अरमान न निकले
बदल गए जो समय देखकर उनसे करता रहा ढिठाई,
तुम चलते थे देह सटाए तुमसे बात नहीं हो पाई।

मुझे देखनेवालों ने ऐसे देखा मानो अपने हों
ऐसे रूप दिखाए जैसे सच होनेवाले सपने हों
ऐसी आस दिलाई गई कि मैंने अपने प्राण दे दिए
सबकी मनमानी करके अपने सिर सारे पाप ले लिए
कही गई कहनी-अनकहनी
मुझे पड़ीं सब बातें सहनी
जिनके हाथ नहीं थे रीते द्वार उन्हीं के अलख जगाई,
तुम चलते थे देह सटाए तुमसे बात नहीं हो पाई।

मुझे मिली थी प्रातःफेरी, उतर गई सिर पर दोपहरी
घर आया थककर संध्या को, लगती रूठी-रूठी दहरी
कमरे के एकांत द्वार पर मिला उदास अँधेरा प्रहरी
आशाओं के जन्मस्थल से मिलती रही निराशा गहरी
एक भूल होती दब जाती
धरी रही शूलों पर छाती
जीवन की हर रीति—चलन में चुभती रही सदैव रुकाई,
तुम चलते थे देह सटाए तुमसे बात नहीं हो पाई।

जन्म-जन्म ने किया बिछौना चुन-चुनकर कलियों की ढेरी
बचपन क्यारी, यौवन काँटा, सुमन-सुमरनी हेरा-फेरी
अँगुरी-अँगुरी शूल चुभे जीवन की पीड़ा रही घनेरी
याद महकती, साँस हुमकती, आँख लग गई बहुत सवेरी
आस ढल गई, प्यास छल गई
इतनी प्यास कि साँस जल गई
जब तक तुम पर अधर टिकाऊँ साँसों को मिल गई विदाई,
तुम चलते थे देह सटाए तुमसे बात नहीं हो पाई।

सारी माटी दान हो गई

मन की गीली माटी को ऐसे हाथों ने छुआ जतन से
एक-एक अँगुली में रच कर सारी माटी दान हो गई।

जब तक प्रिय से मिलन नहीं था, जीवन में संतुलन नहीं था
मेरे वश में बहुत भुवन था, फिर भी मन का भुवन नहीं था,
घर आए सामाजिक धन से, कुछ ऐसी पहचान हो गई
मेरे घर में मेरी माटी मुझसे ही अनजान हो गई।

पाप-पुण्य के गुण-दोषों की मुझको रही बहुत दिन उलझन
मुझ पर व्यर्थ कलंक लगे, जग ने भोगे सब भोग सँजीवन
जितने अधिक कलंक लगे उतना ही पाया भेद चिरंतन
खोए विश्वासों ने आकर किया प्रिया-पग का अभिनंदन

जब तक प्रिय की चाह न बोली
मैंने मन की गाँठ न खोली
कुछ क्षण के साथी की चिंता मेरा तन-मन-प्राण हो गई।

माली मधुवन दरस-परस में कुछ इतनी कर गए कल्पना
किसी एक की भूल-चूक में उभय पक्ष से मिली सान्त्वना
बहुत बरन बाने बदले वैरी शूलों का किया सामना
मधुवन-मधुवन रीति-चलन का तोड़ दिया अनरीत बचपना

जब यथार्थ ने ली अँगड़ाई
आदर्शों ने की पहुनाई
सारे बंधन स्वयं खुल गए जब होनी बलवान हो गई।

साथी को ठुकराओगे तो कब तक कोई साथ चलेगा
साथ-साथ यदि चल न सके तो तुमको कोई साथ न लेगा
झूठे आदर्शों की वेदी पर कब तक संसार छलेगा
चिर प्यासे अधरों का चुंबन नहीं लिया तो जन्म जलेगा

बागों पर जब घटा झुकी है
कब मयूर की चाह रुकी है
मेरे तन पर प्रिय के तन की छाया स्वर्ग-वितान हो गई,
एक-एक अँगुली में रच कर सारी माटी दान हो गई।

बात खुल जाएगी

बात मन में तुम्हारे छिपी है कोई
तुम छिपाती रहो बात खुल जाएगी
तुम गला घोंटती ही रहो दर्द का
बंदिनी आह मुख से निकल जाएगी।

स्नेह से एक नज़र देखना कम नहीं
बीज छोटा, मगर वृक्ष बनता बड़ा
स्नेह की चातकी नीड़ रखने लगे
तो उसे भूलसे तुम न देना उड़ा

तुम उड़ादो भले ही उसे दूर तक
चातकी बावरी लौट-लौट आएगी,
तुम छिपाती रहो बात खुल जाएगी।

दृष्टि से दृष्टि की शुभ सगाई हुई
बंद पलकों के घूँघट उठाओ ज़रा
सृष्टि रचने दो अनुभूति परिवार की
नयन की आरसी भूमि हो उर्वरा

बीज से भूमि की भाँवरें पड़ गईं
कोई कमनीय कोंपल निकल आएगी,
तुम छिपाती रहो बात खुल जाएगी।

जब किसी स्रोत ने मस्त अँगड़ाई ली
दृढ़ हिमालय की दृढ़ता भी कट-छँट गई
मीत कान्हा की बंशी बजी ध्यान में
भावना राधिका की बिखर लट गई

बाँधती ही रहोगी नए बाँध तुम
अर्चना राह कोई नई पाएगी,
तुम छिपाती रहो बात खुल जाएगी।

दूर कोई किसी से कहीं भी नहीं
हर दिशा तार मन के मिले जा रहे
मीत को मीत का ध्यान रहता सदा
मन को मन के सँदेसे चले जा रहे

कल्पना की दुल्हन की उठी पालकी
बात चलते-चलाते चली आएगी,
तुम छिपाती रहो बात खुल जाएगी।

फँस गई शूलवन में अगर साँवरी
घाव लेकर भले ही निकल आएगी
किंतु, फूलों पे ढाँपी हुई चूनरी
फट न जाएगी लेकिन उलझ जाएगी

खींचो आँचल न कोमल कलीकुंज से
पाँखुरी-पाँखुरी साथ में आएगी,
तुम छिपाती रहो बात खुल जाएगी।

आवाज़ लगा देना

जब मुझे बुलाने में तुमको भय हो तो
आवाज़ लगा देना संकेतोंवाली।

जब प्राण प्यार के बंधन से अकुलाते
गिरते समाज के भार नींद के माते
जबरन लादे जानेवाले सब नाते
खोटे सिक्के की तरह निकाले जाते

जिसने देखा जीवन का बाहर-भीतर
मन की सीमा से दूर किया जग-विषधर

सच तो यह है कि समाज बड़ा जंजाली
जितने नाते जोड़े जाते सब जाली

मैं दीवारों के कानों से डरता हूँ
बस नयन झुका हँस देना, ओ मतवाली।

जब पाप-पुण्य के प्रश्न उलझ जाते हैं
ज्ञानी कुछ कहते-कहते रुक जाते हैं
निर्णय की तुला समय के हाथ रही है
अवसर दो पलड़े हैं उठ-झुक जाते हैं

हमने दुनिया को जितना देखा-भाला
बस उतने ही में अर्थ-अनर्थ निकाला

अब रीति समार्जी है कुछ ऐसी खाली
ज्यों हारे हुए जुवारी की दीवाली

जीवन के बोल अगर कहना-सुनना है
कुछ भाषा रच लेना दो अर्थोंवाली।

कल जिसने जग ठुकराया बहुत बुरा था
कर रहा वही नेतृत्व समाजी दल का
जो आज तोड़ता बंधन—दुस्साहस है
बन जाएगा दुस्साहस साहस कल का

जग सीधी बात न सुनने का आदी है
पर, घुमा-फिराकर बात वही लादी है

मैंने दुनिया बेपर्दा देखी-भाली
करती है आँख बचाकर निज रखवाली

फिर भी तुमको यदि मिलने से भय है तो
दो शब्दों की पाती लिख देना, आली।

उमरिया रूठ गई

हाय लड़कपन, खेल-खेल में क्या जाने क्या चूक हुई,
जन्म बँध गया गँठबंधन में साथिन मन की हूक हुई।
लुका-छिपी के खेल लड़कपन में हम जी भरकर खेले
कभी नहीं कमजोर साथियों ने भी क्षणभर दुख झेले
ढूँढे गए न मित्र छिपे तो स्वयं सामने निकल चले
स्नेह और हमदर्दी इतनी साथी को बिछड़न न खले
जब तक तन-मन अर्पित होते
प्रिय का मधुमय प्यार सँजोते
झूठे सामाजिक बंधन में प्रीति नगरिया रूठ गई।

कली न खिलती तो भौंरे का मन होता कमजोर नहीं
उठता दर्द हमारे दिल में, लेकिन दर्द कठोर नहीं
पलभर उनको देखा, पल में रहा समय का छोर नहीं
ऐसे सुंदर नयन न देखे, जिनमें हो चितचोर नहीं
प्रिय के पग-तल नयन बिछाए
पग-पग मैंने सुमन खिलाए
जिसमें प्रिय के चरण-चिह्न थे वही डगरिया रूठ गई।

आँख स्वप्न में रोई फिर भी सिरहाना तो भीग गया
स्वप्न-जागरण एक, कहाँ से लाऊँ स्वप्नविचार नया
नई उमर की आँखमिचौनी सरल खेल, हम गए छले
उमर-उमर की बलिहारी है बैठे हैं हम हाथ मले
बचपनवाली प्रीति न छूटी
बलिदानों की रीति न टूटी
सुख के दो दिन देकर मुझसे सकल उमरिया रूठ गई।

दूर चला जाऊँगा

यदि मेरे कारण तुमको भय है तो मैं
तुमसे इतनी दूर चला जाऊँगा जितना
नभ में पूरब से पश्चिम का लघु तारा।
तुमको गृहदाह जलाता था तो मैंने
जल-जलकर निज बाँहों में तुम्हें सँजोया

लेकिन, जब मैं जल गया तुम्हारे कारण
कर याद तुम्हारी रात-रात भर रोया
यदि तुम मेरा अस्तित्व न समझो तो मैं
तुमसे इतनी दूर चला जाऊँगा जितना
घटती नदिया से पावस-बाढ़-किनारा।

सुखजनक निकटता या दुखमय दूरी क्या
चाहों को हर पहलू से समझा लूँगा
निशदिन की अनगिन कठिन समस्याएँ हैं
इनको सुलझाता दूर निकल जाऊँगा
मेरी बदनाम उमर से डर है तो मैं
तुमसे इतनी दूर चला जाऊँगा जितना
राजमहल से दूर शून्य गलियारा।

मैं ग्रीष्म, शिशिर की पीड़ा से घबराया
फागुन, सावन का आत्मनिवेदन लाया
गृहलक्ष्मी उठकर द्वार तलक ना आई
मैं बंद द्वार से बार-बार टकराया
मेरे आने से तुमको भय है तो मैं
तुमसे इतनी दूर चला जाऊँगा जितना
सोई धरती से दूर अदृश्य सितारा।

मन का सौदागर

मैं फेरी लेकर आया हूँ
जितना जो कुछ चाहो ले लो मन का सौदागर लाया हूँ।

ममता की स्वामिनि महिला को शिशु बन ममता दे सकता हूँ
रसवंती पगध्वनि पर अपना गर्वित मुकुट झुका सकता हूँ
करुणा से शोभित नयनों पर अर्जित भुवन लुटा सकता हूँ
भोले तुतले बालक के सँग बालक बन तुतला सकता हूँ

मन दर्पन का शीशमहल तोड़ोगे तब मुझसे क्या लोगे
कोई प्रत्याशी पूछेगा तब बोलो, क्या उत्तर दोगे
मुट्ठीभर माटी तन में मधुस्रोत जगे, निर्झर फूटे हैं
छोटी-सी गागर मत देखो, भर सारा सागर लाया हूँ
जितना जो कुछ चाहो ले लो, मन का सौदागर लाया हूँ।

चोरी बरजोरी न करो, संकेत करो, जीवन दे दूँगा
जब तक प्राण शेष हैं तुमको प्राणों से बढ़कर समझूँगा
मैं तुमसे केवल सद्भाव प्राप्त कर जीवन चला सकूँगा
सभी तरह से संबंधों की रचना का विश्वास करूँगा
माँगी दान मिली न खरीदी यह मेरी जीवन-गठरी है
जितना दान किया इसमें से गठरी उतनी तुरत भरी है
जिसकी चरणधूलि-चिंतन से राजमुकुट उज्ज्वल होते हैं
मैं जीवन-गठरी उसके हाथों से उठवा कर लाया हूँ
जितना जो कुछ चाहो ले लो, मन का सौदागर लाया हूँ।

दुनिया के लंबे घूँघट पर नज़र-नज़र बेचैन हो गई
चरण महावर पायल पग-ध्वनि में पंचों की सभा खो गई
बंद कली से उलझी शबनम यौवन-सागर में डुबो गई
तृषित आँख को पर्दे के पीछे मधुदानी मिला, सो गई
मौन खड़े, प्रश्नों में उलझे, तुम मन की चंचलता में हो
मन के द्वार खोल कर आओ, बैठो, बात करो, कुछ पूछो
मन के कोने-कोने की ध्वनि बतला दूँगा, समझा दूँगा
जीवन के हर एक प्रश्न का अलग-अलग उत्तर लाया हूँ
जितना जो कुछ चाहो ले लो, मन का सौदागर लाया हूँ।

दूर का दीपक

कुछ बात परस्पर सुनने को मिल जाती है
इतना होने से काम बहुत चल जाता है
हो दूर-दूर तक जब अँधियारा राहों में
तब बहुत दूर का दीपक राह दिखाता है।

मैं तो समझा अब अपना कुछ संबंध नहीं
डाली से छूट कली के पास सुगंध नहीं
पर द्वारों, दीवारों, अधिकारों के कारण
मेरे पथ में तुम हुए कभी पाबंद नहीं
मैंने देखा है तुम्हें, तुम्हारा हाथ पढ़ा
है स्वस्थ हृदयरेखा कोई प्रतिबंध नहीं
हाथों में मिलन आयुरेखा सहयोगी है
मदभरी कलाई में दोषी मणिबंध नहीं
आगे बढ़ने पर धरती पीछे छूटी है
यह सोच-समझ कर सारा दुख टल जाता है।

अपना-अपना है चलन समाजी घेरे में
है छूट वहीं तक तन-मन आता-जाता है
दुनिया है बहुत बड़ी जीवन की माँग बड़ी
है चाह जहाँ जिसकी संसार बसाता है

उठने का चाव बहुत है आज जमाने को
पर, शीश किए नीचे को गिरता जाता है
बीमारी में ऊँची औषध के लालच में
हीरे को पीस जमाना हमें खिलाता है
मन के शिव का जब वरदहस्त उठ जाता है
सारा विष कंठ-अग्नि में ही जल जाता है।

तन का फेरा बेजान मशीन समाजों की
मन के घेरे पर तन की माल घूमती है
उखड़ी है समय-समय पर नींव रिवाजों की
भूचाली मन की नगरी सदा झूमती है
सीधी गलियों में बच-बच कर चलनेवाले
मोड़ों पर आकर छाया देह चूमती है
तन के बंधन से मन को रोक बिठाने में
पहरेवाली दुनिया भी खूब ऊँघती है
पीड़ा के पग प्राणों के घुँघरू बाँध चले
जीवन की लय से हर बंधन खुल जाता है।

निशि लिखते-गुनते-गाते छंद बीतती है
कामों में उलझे-उलझे दिन ढल जाता है
मेहनत करते, दुख सहते जब थक जाता हूँ
आती है याद तुम्हारी दुख टल जाता है
सुख-दुख में, पाप-पुण्य में जग सम्मिलित नहीं
हमदर्दी से दुनियादारी चल जाती है
कर्मों के रोग-भोग का चक्र नहीं रुकता
प्रिय स्नेहदृष्टि से सहनशक्ति मिल जाती है
कुछ हानि न हो उतने तक हाथ बँटाने में
मूरख दुनिया में कुछ संबल मिल जाता है।

कली-कली से परिचय

आता हूँ पलट-पलट कर में श्मशानों से
मधुवन की कली-कली से मेरा परिचय है।
छोटे पौदों से लेकर भरी बहारों तक
निज अधिकारों का गला घोंट मरते-जीते
निज खून-पसीने से मधुवन को सींचा है
मेरे पहरे में कलियाँ सोई-जागी हैं
सौ बार ज़माने के भारी झकझोरे में
मैंने आगे बढ़कर तूफाँ को खींचा है
मानस की भूख-प्यास को जीत विरागी बन
लालची ज़माने से भयभीत बहारों को
अपनी निष्काम सबल बाँहों में भींचा है

ऋतुओं के वेगों में जमता जलता गलता
मैं निष्कासित हूँ, बंद द्वार है मधुवन का
हो गया ज़माना कितना ऊँचा-नीचा है

लुट गई जवानी जिसके द्वार बहारों में
उस प्रिय की देहरी पर जाने में क्या भय है।

इस चंचल युग के डावाँडोल विचारों में
कुछ शिकवा नहीं बदलती आँखों से, सुनते
हैं युग के साथ न बदले वह इंसान नहीं

यह सच है, परिवर्तन जीवन है जगती का
लेकिन, जो बात-बात पर बात बदलते हैं
ऐसे इंसानों का कोई ईमान नहीं

जिस परिवर्तन से प्यार बहार सिंगार मिले
ऐसे परिवर्तन में परिवर्तन लाने से
सीधा रहता है भाग्य नहीं, भगवान नहीं

मजबूर करूँगा मैं मधुवन के घेरे को
फूलों की पंखड़ियों को बहुत मनाऊँगा
माली हूँ, फूलों को तजना आसान नहीं

जिस मधुवन में मेरे मन का मधु बिखरा है
उसकी बहार से भी मेरा नाता तय है।

मैं खड़ा द्वार पर मानों कोई परदेसी
आँखें मिलने पर परिचित कलियाँ हिली नहीं
सूमों के दर से उठा निराश भिखारी-सा

है प्रीति नगर में प्राण अर्चना परिपाटी
मैं बैठ नहीं सकता निष्क्रिय जीवन लेकर
लुट-पिटकर तीखे अनुभव का संसारी-सा

जो खेल जमाया मैंने चढ़ी जवानी में
कुछ सोच-समझ कर उससे हाथ नहीं खिंचता
मैं दाव लगाता डटकर खरे जुवारी-सा

मैं बार-बार इसलिए लौटकर आता हूँ
वरदानों का विश्वास नहीं खोया मैंने
पाषाणों पर सिर फोड़े हुए पुजारी-सा

हो चुकी जीत मेरी पहले ही मधुवन में
अब मेरे लिए न कुछ भी विजय-पराजय है।

जब दो हृदयों की प्यास परस्पर टकराई
माथे पर हाथ धरे विह्वल घायल युग ने
कुछ नियम मिलन के रच समाज को बाँध दिया

जब-जब पानी ढल गया नियम की आँखों का
तलवारों से मन, सुविधा, रूप, प्यार बाँटे
मन की कलियों को शोणित-निर्झर बना दिया

नियमों के हत्यारे मुख पर उर-शोणित के
धब्बे कालिख बन गए समाजी चेहरे के
पीड़ित चेतन को विष दे-देकर सुला दिया

जब भी अधिकार जगे जग में संघर्ष हुआ
मानस-मंथन करके न स्वार्थ साधा हमने
रख दिया अमृत जग के आगे विष स्वयं पिया

विष ने जब-जब नस-नस तोड़ी रस झूम उठा
उर की धड़कन में रस-सागर का संचय है।

जिंदगी चलती रही

जन्म और बचपन

पाँव उठते रहे राह मिलती रही
जिंदगी अपनी राहों पै चलती रही।

हमने रोकर मनुज-जन्म परिचय दिया
गूँज उठा घर तवा, थाली-झनकार से
पास के घर डगर खास बतचल हुआ
लोग परिचित हुए शुभ समाचार से

हम तो रोए मगर ढोलकें बज उठीं
देवियाँ गीत सोहर जगाने लगीं
सारा घर मोद से चूमता गोद ले
मात के मुख मृदुल शक्ति आने लगी

घर खिलौनों से, वस्त्रों से, मिष्ठान्न से
भर गया, आस थी घर चलाएँगे हम
हमने पहना कवच लोक-आशीष का
आस थी स्वर्ग धरती पै लाएँगे हम

जब समय पर सहज ज्ञान बढ़ने लगा
डगमगाते हुए राह चलने लगे
काम की बात जब हम समझने लगे
तब कड़े-नर्म आदेश मिलने लगे

हम मचलते ठनकते बहलते रहे
नित नई चीज की चाह छलती रही
जिंदगी अपनी राहों पै चलती रही।

किशोरावस्था

देह के रोम यों झूमकर झुक गए
ज्यों नई कोंपलों से टहनियाँ लदीं
मृदु रसीली त्वचा में मदिर घट भरे
ज्यों बरसने को नभ में घटाएँ झुकीं
आँख पैनी किए, कान खोले हुए
रंग-ढँग सब जमाने का देखा-सुना
लोकविश्वास में कुछ लिया, कुछ दिया
जिस तरफ जो भी देखा-सुना सब गुना
है अछूती किशोरी कुमारी उमर
प्रेरणा के नए रंग आए उभर
इस उमर में जो साथी बना बन गया
प्राणपट से नहीं हट सका जन्मभर,
राग दीपक जगा फिर प्रभाती तलक
रात मधुबंसरी पर थिरकती रही
फिर दिवस-राग से दीप के राग तक
तान उठती रही, तान गिरती रही
पाँच सखियाँ पहन-ओढ़ सोहाग के
गीत गाती रहीं, देह पलती रही,
जिंदगी अपनी राहों पै चलती रही।

युवावस्था

चमके यौवन गगन में सजीले नखत
मिल गए चाँद जैसे छबीले बहुत
कल्पना जो थी सीमित, असीमित बनी
पर, मिली हमको छोटी-सी दुनिया फकत
जग की छाती पै चल मन की सीमा बढ़ी
कर गए कैद हमको समाजी महल
इसलिए प्रीति ने कुछ सुरंगें रचीं
जब जरूरत हो महलों से जाएँ निकल

हम किसी पर झुके कोई हम पर झुका
प्यारे-प्यारे सहारे निकलते रहे
दर्द लेकर कभी दर्द देकर कभी
रूप और प्यार के पुष्प खिलते रहे

नित ढरारे नयन-मित्र मिलते रहे
पर, समय की डगर में बिछड़ते रहे
दो घड़ी हम ठिठककर खड़े भी हुए
किंतु, अपनी दिशा पाँव मुड़ते रहे

जन्म की प्यास बुझती रही रात-दिन
किंतु, तन में छिपी आग रह भी गई
सब हवाएँ चलीं तेज़ हो रुक गई
मन की पुरवा अगिन रोज़ बढ़ती गई

प्राण जलते रहे, प्यास बढ़ती रही
आग उठती रही, उम्र ढलती रही,
ज़िंदगी अपनी राहों पै चलती रही।

उम्र का उतार

जब जवानी की पहलें बहुत हो चुकीं
ज़िंदगी हर कदम पर पिछड़ने लगी
जब तजुर्बों के झगड़े बहुत बढ़ गए
अक्ल हर बात लेकर उलझने लगी

ढल गया तन, थका मन, झुका बाँकपन
जन्म का खेल ठहराव पर आ गया
जब कोई प्रश्न सुलझाव पर आ गया
इक नया प्रश्न उलझाव पर आ गया

अक्ल की बात हर बात इस उम्र की
बात बिगड़ी भी कुछ तो सँभलती रही,
ज़िंदगी अपनी राहों पै चलती रही।

विछोह

एक दिन ऐसी बदली हवा उम्र की
कुछ बची साँस वह भी उखड़ने लगी
नयन झँपने लगे नींद आने लगी
जिह्वा रुकती न थी सो जकड़ने लगी

द्वार पर जब नक़ारे बजे कूच के
डेरे उखड़े कनातें सिमटने लगीं
जिस घिरौंदे में धरती का शृंगार था
शून्य का घर बना धूल उड़ने लगी

पाप और पुण्य दो पथ-प्रदर्शक बने
कुछ सरल पथ मिले कुछ मिलीं खाईयाँ
एक तन था मगर जाने किस कोण पर
एक तन की बनीं दो-दो परछाईयाँ

कुछ स्वयं ही चले कुछ विवश हो चले
कुछ समय-याचना व्यर्थ करते रहे
कुछ चले गोद के कुछ जवानी भरे
सब तरह के मुसाफिर गुजरते रहे

एक जाते हुए को मनाने लगीं
राह में रोकती-सी कतारें खड़ीं
पाँव में बेड़ियाँ हैं, मगर चल पड़े
जब चिता से मिलन-बाँसुरी बज उठी

आके शमशान में अरथी खाली हुई
रूप की स्वर्णप्रतिमा पिघलती रही,
ज़िंदगी अपनी राहों पै चलती रही।

उपसंहार

फूल तन के बने कुछ नए फूल धन
कुछ धुआँ बन गया राख कुछ बन गई

बोझ माटी बनी सो ठिकाने लगी
पीठ देकर मुड़ी भीड़ फ़ुर्सत हुई

बस यहीं तक रहा प्यार हर व्यक्ति से
फिर नज़र हर किसी की बदलने लगी
हाय, दुनिया बड़ी बेवफा है प्रिये !
दुनिया फिर चाल अपनी-सी चलने लगी

सुननेवाले जुड़े लोकव्यवहार में
और अच्छा ही सबने मृतक को कहा
एक क्षण हमको वैराग्य-सा हो गया
फिर जहाँ पर जो था सब वहीं आ गया

इक मुसाफिर से आई न जग में कमी
प्रीति की बेबसी हाथ मलती रही
जन्म के चिह्न ढलते-बिगड़ते रहे
मृत्यु आ-आके चेहरे बदलती रही

हमसे यह देश छूटा तो क्या हो गया
देश ऐसा ही सुंदर परे और है
इक खिलौना छुटा दूसरा मिल गया
इक जगह छिन गई दूसरा ठौर है

चूनरी जो पुरानी हुई फट गई
इक नई चूनरी लाज ढँकती रही
एक पर्दा गिरा, दूसरा उठ गया
जिंदगी अपना अभिनय बदलती रही

राह में फूल या शूल जो भी मिले
भावना को नई राह मिलती रही,
जिंदगी अपनी राहों पै चलती रही।

प्राण-पथ

एक जन्म का राग प्राण का रोग बन गया
एक जन्म की भूल धूल का रथ सजा गई
बहुत बार प्राणों की चादर झाड़ चुका हूँ
बार-बार जीवन पर तन की धूल छा गई।

अरथी या बारात अपरिचित मिली डगर में
ऐसा लगा कि चित्र उभर आए जीवन के
किसी जन्म में साथ रहा होगा दोनों से
और कदाचित् साथी होंगे घर आँगन के।

जग-मेले में देख खिलौने मचल गया मन
दाम नकद या क्रय-विक्रय के अन्य चलन थे
बिके खिलौने, भग्न खिलौने पड़े रह गए
लगा वक्ष से पूछा—क्या तुम भी पाहुन थे ?

बोल उठा यों खंड-खंड अपनी भाषा में—
सभी पाहुने, एक लक्ष्य, कीमत समान थी,
अश्व नए, सारथी अनाड़ी, रथ हलका था,
ऊँचा-नीचा पंथ, भीड़ में ठेस लग गई।

कहा कि तुमको जोड़-जोड़ क्या मूर्ति बना दूँ
कहा—नहीं, हमको होना है चूर-चूर तन
वर्ष-वर्ष मेले में पावन चरण घूमते
उन चरणों के तीर्थ मिलेंगे कभी धूलि बन

झूम गया मैं सुनकर बातें नई-नई-सी
मन के टूटे दर्पण का उपचार मिल गया
अब तक जो आया हिलती छाया लाया था
अब, जीवन की रचना को आकार मिल गया।

किंतु प्रश्न है—किसके पथ की रज बन जाऊँ,
किसके चरणों पर मस्तक रखकर मर जाऊँ ?
दो राहों में दोनों का कुछ ज्ञान नहीं है,
दोराहे पर अपना जीवन-दीप जलाऊँ।

चहुँदिश हैं चितचोर अंत पथ का अनजाना
जिस पथ में हो ज्योति अधिक उस पर बढ़ जाऊँ
जन्म-जन्म जीवन की कालिख पोंछ सकूँ मैं
किसी जन्म में ज्योति-रेख बन कर लहराऊँ,
धीरे-धीरे ज्योति-पुंज बन कर उठ जाऊँ।

सुहागिन : अभागिन
(एक पत्र)

प्यारी सखियो,
कई दिन हुए 'उनके' द्वारा स्नेहपत्र था मिला तुम्हारा
किंतु लिफाफा खुला हुआ था
मेरी सभी चिट्ठियाँ पहले मेरे स्वामी पढ़ लेते हैं तब देते हैं,
हाल-चाल पूछा है तुमने मेरे घर का
जबसे पत्र मिला है मन में सोच रही हूँ—
लिखूँ, क्या लिखूँ, क्या न लिखूँ मैं ?
साफ-साफ लिख रही तुम्हारी सखी सुहागिन, किंतु अभागिन !
तुम्हें याद होगा मेरे द्वारे शहनाई गूँज उठी थी
और याद होगा वह मानव जिसका चेहरा ढँका हुआ था
सेहरे की कुसुमित लड़ियों से,
विवाहमंडप महक उठा था
घरभर में तुम सबकी क्वारी चहल-पहल थी

तुम सब घेरे हुए मुझे थीं हाव-भाव से
भाँवर के प्रति प्रिय उछाह से
फेरे पड़ने लगे और मेरे जीवन का दान कर दिया मात-पिता ने
मानो बोझ उतारा मुझ-सी वक्ष-शिला का
इतने तक तो तुम्हें ज्ञात है
इसके आगे तुम्हें आज बतलाऊँ मेरा जीवन क्या है ?
डोली चढ़ जीवन-साथी के साथ आगई
नए भवन में,
ढली-ढली-सी गीली मिट्टी के घेरे में।

मैं पत्नी हूँ—
एक समर्पणकर्त्री पुतली
यही परीक्षित चिरविधान आया दहेज में
'मरो या भरो' इसके आगे कुछ विधान है शेष नहीं ज्ञानी समाज में
रातें और प्रभात सजीले मधुवेलाएँ व्यर्थ बीततीं
जी करता है सुखद सवेरे अँगड़ाई लेकर उठ बैठूँ
और सलोने शुभप्रभात पर ईश्वर को नित धन्यवाद दूँ
किंतु देखकर अगति जन्म की
जी करता है गला घोंट लूँ !

मानों मैं टूटी नौका हूँ
और शोक के महाजलधि में धीरे-धीरे पैठ रही हूँ
यहाँ नहीं उर-दीपक जलते
जलते हैं तो नहीं उजेला होता मेरे सूने उर में
जिनसे दिन-दिन तन गिरता हो
उन पकवानों से अच्छी रूखी रोटी जौ, धान, मटर की,
यदि मेले की धूल-गंध से दम घुट जाए
तो निर्जन आवास भला है
यदि मीठी औषध साधारण-से ज्वर को क्षयरोग बनादे
तो निर्जल उपवास भला है

अगर सुरक्षा के आयोजन से घुटकर जीवन समाप्त हो
तो विपत्ति से लड़ते-लड़ते मरमिट जाना कहीं श्रेष्ठ है
रेशमीन वस्त्रों में लिपटे तन के परवश ढीले आलिंगन से मन कुरूप हो जाए
इससे अच्छा किसी विरागी के चरणों की रज बन जाऊँ,
मैं गरीब घर की लड़की थी
क्वारेपन में सोचा करती यौवन एक असीमित धन है
और बुढ़ापा—दिवालिएपन का क्रंदन है
अब लगता है दिवालिया यौवन दुखदायी
और बुढ़ापा—पूँजीपति का सूदखोर धन दीनदेश में,
इस नगरी के अंबर पर जब सावन-भादों गर्जन करते
मोर न पागल होकर गाते, नर्तन करते
और मयूरी को पुलकित हो झूम-झूम
प्रिय निकट सिहरने का सौभाग्य नहीं मिलता है
जब चातक की करुण पुकारें
अर्धरात्रि के सन्नाटे में आग लगाती हैं तन-मन में
ऐसे करुण समय में घर का गँदला नीर नहीं भाता है
स्वातिबिंदु परदेसी बन कर
इस जीवन से छूट रहा है
यहाँ धौंकनी की ठंडी-ठिठुरी साँसों से लोहा पिघलाया जाता है
यहाँ खंडहरों में वंदनवारें सजती हैं
यहाँ थकित-कंपित हाथों से, नोकहीन टूटे बरमे से
चिकने-चिकने गोल मोतियों को छिद्रित कर
माल पिरोए जाने का उपक्रम होता है
मधुमासों में नई कोंपलें नहीं फूटतीं
अमराई में कोकिल के स्वर नहीं गूँजते
भौंरे मदमाती कलियों से संन्यासी बन रूठ रहे हैं
कलियाँ वैरागिन बैठी हैं
बौर लदी अमराईयों पर टिकी हुई सूखी लकड़ी विश्राम कर रही
जगरमगर दीपावलियों में खील-खिलौने विष लगते हैं

दिए हृदय के घाव सदृश हैं,
होली जब आती, लगता है
मेरे उर का शोणित लेकर
सारा जग हुड़दंग मचाता खेल रहा है
कभी विहँसते पास-पड़ोसी दंपतियों को देख-देखकर
भर उठती हूँ दबी आह से, प्रीति-चाह से, प्रकृति-दाह से
किंतु, स्वयं की मजबूरी को सोच-सोच कर मन बुझता है।

प्यारी सखियो,
उर में रखने योग्य नहीं कोई घटना है
जहाँ आत्मा को न शांति हो वहाँ ठहरना घोर पाप है
जी करता है इस समाज के पापी बंधन तोड़ फेंक दूँ
किंतु, जगत की चकफेरी में स्वयं घूमकर रह जाती हूँ
और विवशता का दौरा पड़ने लगता है,
मुझे दीखता सारे घर में आग लगी है
आग लगानेवाले मेरे शुभचिंतक हैं—सब समाज है
लपटें बढ़कर सारा आँचल जला चुकी हैं
अंग-अंग जलने वाला है,
मुझे आग जो दी समाज ने
काश, विश्वको इसका अनुभव धरती से अंबर तक होता,
जब कमरे की खुली खिड़कियों से बगिया का दृश्य देखती
लगता है कोमल कलियों पर धरे खुरदरे पत्थर भारी
घायल होकर कुचल गई होंगी सब कलियाँ
किंतु न पत्थर हट पाएँगे
मेरे मन की बगिया में औंधेमुख लतिकाएँ रोती हैं
वृक्ष लदे हैं फल-फूलों से
उनपर मधुर बोलनेवाले विहग नहीं हैं।

भूख नहीं लगती है तो भी घरवालों के कहने से कुछ खा लेती हूँ
किंतु, नहीं भोजन पचता है

जो कुछ पचता अंग न लगता
रात गए तक 'जीवन-धन' का शीष दबाती,
पग सहलाती, मन बहलाती, तन उलझाती,
जबरन लिपटादी है लतिका उखटे तरु से
रोटी के दो टुकड़ों में सखि, बड़ी शक्ति है
क्योंकि इन्हीं का बंधन-बल खूनी समाज में
शुभनारी से आत्मसमर्पण करवाता है।

कहाँ तुम्हारा धर्म-शास्त्र है, बुद्धि-ज्ञान है, जो बतलाए
विवश नारियाँ किस पथ जाएँ
जब उनकी स्वाभाविक स्वीकृत मान्य और आवश्यक इच्छा
पूर्ण नहीं होती जग के झूठे बंधन में
कैसे पति की सेवा-रेशमडोरी में बँध त्यागयान से
चढ़ती जाएँ दिव्यलोक में
कुछ बतलाएँ, क्या विचारकों से उनकी प्रतिभा रूठी है
मुझ-सा व्यक्ति गृहस्थी से क्या वानप्रस्थी, संन्यासी बन
विश्वप्रेम में जीवन अर्पित कर सकता है ?

कहाँ सो गई मनु की चिंता ?
बनकर नारी की दुश्चिंता
एक ओर हैं विवश दीन माँ-बाप
साथ में दिन-दूनी होती बालाएँ
और सामने—बालाओं के दीन पिता-माता से
हरने को ममता ईमान
अर्थ का स्वर्णपींजरा, जनजीवन की कालकोठरी,
जिस क्षण बूढ़े पुरुष हृदय में
नारी के चढ़ते यौवन का लालच आया
और लालची खूनी कुत्तों के सम्मुख अंधे समाज ने
नारी के कोमल अंगोंका टुकड़ा-टुकड़ा फेंक दिया था
उस ही क्षण से शुरू हुआ है नारी हत्याकांड—
विश्व की मातृशक्ति का मर्श।

मुझे तो लगता है पीहर-पीहर में हर गैया की बेबस बछिया
कुछ सिक्कों में पापी हाथों बिक जाएगी ।
उनको यात्रा की जल्दी है—मुझे ठहरने की अभिलाषा
मुझको जीवनभर का कोई दुख हो जाए सह लूँगी मैं
किंतु, गलित तन को लिपटाना-चिपटाना यातना नरक की
कबतक यूँहीं हाट पाप की लगी रहेगी
देखो, कबतक पिंजरे में प्यासा पक्षी जीवित रहता है ।

प्यारी सखियो,
पढ़कर मेरा पत्र विषभरा
कह सकती हो—
मेरे नारी मन का धीरज छूट रहा है
तन का संयम टूट रहा है
क्या तुम सोच सकोगी मेरे ज्वलित प्रश्न पर ?
पत्र लिखा है बहुत सोचकर, हृदय थामकर, हाथ रोककर, भाव टोककर
क्योंकि न हो जाए संक्रामक दुःख हृदय का
स्वल्प लिखे को बहुत समझना
इस समाज में जैसी अगति हुई नारी की
मुझही जैसी विवश नारियाँ समझ सकेंगी
सोच सको तो नारी-मनके प्राणतत्त्व से निर्णय करके उत्तर देना
आदरणीयों को न बताना लेख पत्र का
बस, प्रणाम भर ही कह देना
कह देना—सब कुशल सहित हैं
किंतु, कुँआरी सखियों को यह पत्र सुना देना समझाकर
पत्र विषभरा अविवाहित भोली सखियों को जीवन औषध बन सकता है
ताकि दुःख अब और न बढ़ पाए समाज में
पीड़ा से अब और अधिक बोझिल न धरा हो
बच्चों को आशीष हृदय से
उन्हें प्यार कर लेना मेरे आत्मभाव से



मैं अपनी रचनाओं में अधीर रहा हूं कि कामनाओं की सिहरन हो, मुक्त हृदय की धड़कन हो, अकृत्रिम हस्ताक्षर हों, मनुष्य के स्वाभाविक चारित्रिक सत्य के आयाम हों—कोई बौद्धिक भ्रम न हो। मनुष्य का जीवन संसार की सबसे बड़ी वास्तविकता है। जीवन के सत्य को अपदस्थ न करके समाज की तंद्रिल चेतना में उथल-पुथल करके मानव-मन को जीवन के शोभन यथार्थ की दिशा में ले जाने की कुछ भी शक्ति इन रचनाओं में हो तो मैं अपने कवि को जागरूक मानूंगा, इसी में उसका उन्मेष है, जो मेरी काव्य-तीर्थयात्रा के लिए यथेष्ट है।

—रमेश शेखर